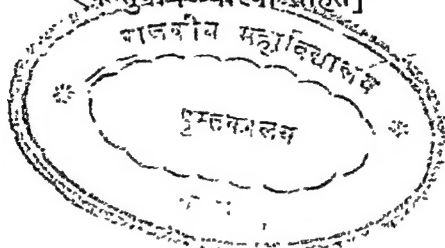
महाकवि श्रीहर्ष प्रणीता—

रत्नावली नाटिका

[आलोचनात्मक अध्ययन]

[परीक्षोपयोगी विविध प्रश्नों के उत्तर तथा पृष्टव्य श्लोकों की सरल एवं सुबोध व्याख्या सहित]



लेखक :

चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्याचार्य

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी), साहित्यरत्न

प्रकाशक :

साहित्य भण्डार,

सुभाष बाजार, मेरठ।

मूल्य २·५० पैसे

प्रकाशक :
श्री रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ।

मूल्य : दो रुपया पचास पैसे मात्र

मुद्रक :
भगवती प्रिंटिंग प्रेस,
सराय लालदास, मेरठ।
दूरभाष : ७४८०६

रत्नावली नाटिकान्तर्गत सूक्तियाँ

(१) अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभाव: ।
(२) आत्मा किल दु:खमालिख्यते ।
(३) आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूत: ।
(४) इयमनभ्रा वृष्टि: ।
(५) ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरनुरोधवृत्ति स्वामिभक्तिव्रतम् ।
(६) ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुन र्दृश्यते ।
(७) एषा खलु त्वयाऽपूर्वा श्री: समासादिता ।
(८) कष्टोऽयं खलु भृत्यभाव: ।
(९) कस्मात् परिहासशीलययेमं जनं लघुं करोषि ।
(१०) किं पुन: साहसिकानां पुरुषाणां न संभाव्यते ।
(११) किमियमकारणमेव पुरुषाणां न सँभाव्यते ।
(१२) ग्राम्यो यथाहं कृत: ।
(१३) घुणाक्षरमपि कदापि संभवत्येव ।
(१४) तत्कस्माद आरण्यरुदितं करोषि ।
(१५) तपति प्रावृषिनि तरामभ्यर्णजलागमोदिवस: ।
(१६) दिष्ट्या वर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्धया ।
(१७) दु:खावगाहा गतिर्दैवस्य ।
(१८) न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्त्राभिरमते ।
(१९) न खलु सखि जने युक्त एवं कोपानुबन्ध: ।
(२०) वि:शेषं यान्तु यान्तु शान्तिं पिशुनजगरो दुर्जया वज्रलेपा: ।
(२१) प्रकृष्टाय स्खलितमविषह्यं हि भवति ।
(२२) भो: किमेतैर्वक्रमणितै: ।
(२३) मद्भाग्योपचयपादयं समुदित: सर्वो गुणानां गण: ।
(२४) मनश्चलं प्रकृत्यैव ।
(२५) रमयतितरां संकेतस्था तथापि कामिनी ।

परिशिष्ट

संस्कृत में छायानुवाद कीजिये—

(१) विअसि अबउलासोअओ कंक्खि अपि अजण मेलओ।
पडिबालणासमत्थो तम्मइ जुवई सत्थओ॥

संस्कृत-छायानुवाद—

(१) विकसित बकुलाशोकक: काङ्क्षतप्रियजन मेलक:।
प्रतिपालनासमर्थकस्ताम्यति युवती सार्थक:॥

(२) इह पढमं महुमासो जणस्स हिअआइं कुणइ मिउलाइं।
पच्छा निज्झइ कामो लद्धप्पसरेहिं कुसुमबाणेहि॥

संस्कृत-छायानुवाद—

(२) इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि।
पश्चाद्विद्धयति कामोलब्धप्रसरैः कुसुमवाणैः॥

दुल्लहजण अणुराओ लज्जा गुरई परव्वसो अप्पा।
पिअसहि विसमं प्येम्मं मरणसरणं णवरमेवककम्॥

संस्कृत-छायानुवाद—

(२) दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं न वरमेकम्॥

(३) पणमह चलणे इन्दस्स इन्दजाल अपिणद्धणामस्स।
तह जेव्व संवरस्स माआ सुपरिट्ठिदजसस्स॥

संस्कृत-छायानुवाद—

(३) प्रणमत चरणाविन्द्रस्येन्द्रजालकपिनद्धनाम्नः।
तथैव शम्बरस्य माया सुपरिस्थितयशसः॥

(४) किं धरणीए मिअङ्को आआसे महिअरो जले जलणो।
मज्झणहम्हि पओसो दाविज्जइ देहि आण्णत्तिम्॥

संस्कृत-छायानुवाद—

(४) किं धरण्यां मृगाङ्क आकाशे महीधरो जले ज्वलनः ।
मध्याह्ने प्रदोषो दर्श्यतां देहयाज्ञप्तिम् ॥

मज्ज पइण्णा एसा जं जं हिअएण इहसि संदट्ठुं ।
तं तं दंसेमि अहं गुरुणो मन्तप्पहावेण ॥

संस्कृत-छायानुवाद—

मम प्रतिज्ञैषा यद्यद हृदयेनेहसे संद्रष्टुम् ।
तन्तद्दर्शयाम्यहं गुरोर्मन्त्र प्रभावेण ॥

रत्नावली—नोटिका

समीक्षात्मक—भाग

प्रश्न १—महाकवि श्री हर्ष का राज्य काल और उनके जीवन का संक्षिप्त विवेचन कीजिए ?

हर्ष से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति—स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) के सम्राट हर्ष अथवा हर्षवर्धन से पूर्व उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। ईश्वी पूर्व ३२२ में मौर्य राज्य की स्थापना हो चुकी थी। मौर्य काल से लेकर हर्ष के समय तक अनेक राजाओं ने प्रयास किया था कि उत्तरी भारत में राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ हो जाये इन प्रयास कर्त्ताओं में चन्द्रगुप्त और सम्राट अशोक का प्रयास प्रशंसनीय एवं सफल कहा जा सकता है। तथापि उत्तरी और पश्चिमी सीमा पर होने वाले आक्रमणों के कारण मौर्य साम्राज्य के प्रयास स्थायी न रह सके। मौर्य राज्य के पतन के बाद गुप्त राज्य की स्थापना हुई और उत्तरी तथा पश्चिमी सीमा पर अनेक छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हुई तथा अनेक राज्य समाप्त भी हो गये। कुषाण काल में ईशा की प्रथम शताब्दी में कनिष्क का शासन प्रशंसनीय था। कनिष्क का राज्य मथुरा तक फैला हुआ था।

३२० ई० के लगभग उत्तरी भारत पर गुप्तवंश का शासन प्रारम्भ हुआ और लगभग एक शताब्दी तक गुप्तवंश का शासन रहा। यह काल अव्ययन का विशिष्ट समय माना जाता है। वस्तुतः गुप्तकाल तो भारत के लिये सर्व प्रकार की उन्नति कारक हुआ इसीलिए इस काल को स्वर्ण युग कहा जाता है। इसी समय में कविकुल गुरु कालिदास ने अपनी काव्य-मन्दाकिनी प्रवाहित की थी जो निरन्तर अजस्र एवम् अबाध गति से प्रवाहित होती हुई सहृदयों के हृन्मानस को आनन्द से आप्लावित एवम् प्रेरणा प्रदान करती रहेगी। ४५५ ई० के लगभग गुप्तवंश का पतन हुआ और हूणों के साथ संघर्षमय अस्थिरता के कारण इतिहास में मोड़ आ गया।

म्लेच्छों के आक्रमणों को विफल और उनको भगाने में सफल पराक्रम प्रदर्शित करने वाले हर्ष के पिता प्रभाकर वर्धन और उनके बड़े भाई राज्य-वर्धन हुए।

प्रभाकर वर्धन का शासन काल—(५८४ ई० से ६०५ ई०) हर्ष का वंश परम्परा पीढ़ियों से राज परम्परा थी। हर्ष की दादी गुप्त वंश की राजकुमारी थी। प्रभाकर वर्धन एक प्रतापी एवं स्वाभिमानी सफल शासक थे। जिन्होंने छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) को अपने वश में कर लिया था। समाप्त प्राय गुप्तवंश के भग्नावशेष महलों पर एक नवीन साम्राज्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया था। प्रभाकर वर्धन ने अपने बड़े पुत्र राज्य वर्धन को भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर भेजकर हूणों के अवशिष्ट प्रभाव को समाप्त करने का साहसपूर्ण कार्य किया था। ६०५ ई० में प्रभाकर वर्धन की मृत्यु ज्वराक्रमण से हो गई थी।

राज्य वर्धन का शासन काल—(६०५ ई० से ६०६ ई०) प्रभाकर वर्धन के निधन के पश्चात् राज्यवर्धन ने शासन सूत्र अपने हाथ में लिया। ये उस समय १६ वर्ष के लगभग थे। राज्य ग्रहण करते ही राज्यवर्धन ने मालवा के राजा पर प्रतिशोध लेने की भावना से आक्रमण किया। क्योंकि मालवा के राजा ने राज्यवर्धन के बहनोई को मारकर उसकी बहन 'राज्यश्री' को कन्नौज के बन्दीगृह में डाल दिया था, राज्यवर्धन ने आक्रमण करके मालवा के राजा का वधकर डाला परन्तु मालवा के राजा के मित्र वंग देश के राजा 'शशांक' ने धोखे से राज्यवर्धन का वध अपने घर में ही कर डाला था। इस विषम स्थिति में किसी प्रकार 'राज्यश्री' कन्नौज से निकलकर विन्ध्याटवी में शरण ग्रहण की, इस प्रकार राज्यवर्धन की असमय में ही मृत्यु हो गई और उनकी आशाओं पर तुषारापात हो गया।

हर्ष का शासन काल—राज्य-वर्धन का आकस्मिक निधन हो जाने पर हर्ष ने शासन सूत्र ६०६ ई० में संभाला। उस समय हर्ष की आयु केवल १७ वर्ष के लगभग थी। सामन्तों एवं सरदारों ने मिलकर ६०६ ई० के अक्टूबर मास में हर्ष को राज्य सिंहासन पर बिठाया, इस तिथि का भारतीय इतिहास में

विशेष महत्व है इसके पश्चात ६ वर्ष बीतने पर श्री हर्ष ने अपने नाम से एक नवीन सम्वत्सर का प्रारम्भ किया।

सामन्तों के कथनानुसार राजसिंहासन स्वीकार करके भी हर्ष ने 'राजा' की उपाधि नही धारण की। वह केवल-राजकुमार 'शीलादित्य' के नाम से ही ६ वर्ष तक राज्य का संचालन किया। सर्व प्रथम हर्ष ने शासन सूत्र संभालते ही अपनी बहन-राज्यश्री का खोज करना ही उचित माना। चारों ओर गुप्तचरों को भेजकर 'राज्यश्री' का पता लगाने का अथक प्रयास किया। एक दिन जब वह राज्यश्री विन्ध्याटवी में अग्नि की सहायता से अपनी हत्या करना चाहती थी—कि हर्ष सहसा वहां पहुंचे बहन की रक्षा करने में सफल हो जाते हैं और उसे राजधानी ले आते हैं। बाणभट्ट और ह्वेन्त्सांग के वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष राज्यश्री की प्रेरणा से ही बौद्ध धर्म में श्रद्धा रखते थे। राज्यश्री के उद्धार के बाद यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता है कि उन्होंने अपने भाई के हिंसक शशांक से प्रतिशोध ले लिया था। तथापि ऐसा प्रतीत होता है—कि ६१९ ई० के बाद शशांक को राज्य हर्ष ने अपने वश में कर लिया था। हर्ष ने राज्य ग्रहण करते ही उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये प्रतिपक्षियों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया था। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग ने कहा है कि—"वह आज्ञा को शिरोधार्य न करने वालों का दमन करता हुआ पूर्व से पश्चिम तक गया था। और उसके हाथियों अम्बारी उत्तरी और उसके सैनिकों के कवच' भी उतरवा लिया था। हर्ष ने राज्य ग्रहण के प्रथम ६ वर्षों में ही—विशाल सेना की सहायता से सफलता प्राप्त करते हुए 'महाराजाधिराज' की उपाधि को ६१२ ई० में प्राप्त किया था।

उत्तरी भारत पर पूर्ण शासन हो जाने पर दक्षिणी-भारत की ओर भी विजय के लिये प्रस्थान किया, परन्तु ६२० ई० में चालुक्य वंशी राजा पुलकेशि द्वितीय से पराजित हुए। पंजाब को छोड़कर समस्त उत्तर भारत पर हर्ष का अधिकार था। १८ राजा हर्ष के अधीन थे। हर्ष का अन्तिम युद्ध उनकी मृत्यु के ४ वर्ष पहले ६४२-६४३ ई० में महानदी के दक्षिण में बंगाल की खाड़ी के किनारे पर स्थित गंजाम (कोंगोडा) प्रदेश को अपने अधीनस्थ करना था।

हर्ष के शासन की विशेष घटनायें—हर्ष केवल एक युद्ध विजेता ही नहीं थे अपितु वे एक सफल शासक भी थे। हर्ष ने थानेसर के अतिरिक्त कन्नौज को राजधानी बनाया। आपकी सभा में विशिष्ट विद्वानों का सम्मान किया जाता था, और शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। वह विद्वानों तथा कवियों को आश्रय एवं वृत्ति धन, मान तथा यश प्रदान करता था। हर्ष का नाम केवल साहसी, वीर एवं योग्य शासक के रूप में ही नहीं अपितु वह स्वयं विद्वान महाकवि, एवं दार्शनिक था, वे एक कठोर शासक माने जाते हैं साथ ही उनकी धार्मिक भावना, सहिष्णुता, उदारता, एवम् विदग्धता का समाज में बड़ा आदर था और आज भी है। उन्होंने कन्नौज और प्रयाग में धार्मिक सभाओं का आयोजन किया था" ह्वेन्त्सांग ने इन धार्मिक सभाओं का विस्तार से वर्णन किया है—कि" यह उत्सव बड़ी सजधज के साथ कन्नौज में प्रारम्भ हुए और उसी शान से प्रयाग तक चलते रहे, प्रयाग में उत्सव के पहले दिन बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई फिर दूसरे तथा तीसरे दिन सूर्य और शिव की मूर्तियों की स्थापना की गई, इससे हर्ष की धार्मिक भावना का स्पष्ट परिचय परिचय प्राप्त हो जाता है।

प्रो० कॅविल का कहना है कि प्रथमदिन नागानन्द नाटक का अभिनय किया गया और दूसरे दिन प्रियदर्शिका का तथा तीसरे दिन रत्नावली का अभिनय किया गया होगा। परन्तु इस कथन का कोई आधार नहीं है। इसके पश्चात् प्रयाग की सभा में आये हुये हजारों ब्राह्मण, जैन बौद्ध मतावलम्बी महात्माओं को, तथा निर्धनों को हर्ष ने राजकीय धन बाँटा था। उत्सव की समाप्ति पह हर्ष ने राज्यश्री के द्वारा प्रदत्त एक पुराना 'अंगरखा' धारण किया था जो निर्धनता का द्योतक था। ऐसा उत्सव हर्ष के राज्य में प्रति पाँचवे वर्ष मनाया जाता था।

हर्ष ने अपने अन्तिम जीवन में अशोक के समान धर्म भावना को ही शान्ति एवं सुख का साधन स्वीकार किया था ६४६ ई० के उत्तरार्द्ध और ६४७ ई० के पूर्वार्द्ध में हर्ष का निधन हो गया। हर्ष के शासन के समाप्त होते ही प्रजा में अराजकता एवं अव्यवस्था का साम्राज्य छा गया था।

हर्ष का स्थान—यद्यपि हर्ष ने अपने शासन में सम्राट् अशोक के आदर्शों को उतारने का प्रयास किया परन्तु अशोक जैसी उदात्तभावना हर्ष में नहीं थी। अशोक के समान हर्ष ने भी अपने अन्तिम शासन में बौद्ध धर्म का आदर किया परन्तु हर्ष के समय बौद्ध धर्म के अनुकूल वातावरण एवं परिस्थितियां नहीं थीं। और अशोक के समान बौद्ध धर्म के प्रचार का अदम्य उत्साह भी हर्ष में नहीं था। शौर्य एवं स्वाभिमान की रक्षा में कटिबद्ध हर्ष का सैनिक जीवन कनिष्क के समान अधिक था। कतिपय विचार धाराओं के अनुसार हर्ष की तुलना चन्द्रगुप्त द्वितीय से की जा सकती है। लेखक एवं वीर योद्धा के रूप में हर्ष की समानता मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से की जा सकती है। हर्ष की संगठन शक्ति, और शासन की कुशलता की तुलना सम्राट अकबर से की जा सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हर्ष अपराजेय योद्धा, अदम्य साहसी, एवं उत्साही कुशल शासक, प्रजापालक, विद्वानों तथा कवियों के आश्रय दाता तथा स्वयं प्रतिभा सम्पन्न महा कवि, दोनों के सहायक महान् ऐश्वर्य सम्पन्न योग्य राजा थे।

प्रश्न २—हर्ष के आश्रित कवियों का संक्षिप्त परिचय का उल्लेख करते हुए उनका कवि के रूप में परिचय प्रस्तुत कीजिये—

भारतवर्ष में यह परम्परा अक्षुण्ण रूप से प्राप्त होती है कि ये राजा गण कवियों के आश्रय दाता, विद्वानों के सम्मान कर्ता थे वैदिक काल से लेकर लौकिक साहित्य रचना काल में भी यह परम्परा प्राप्त होती है परन्तु उन समस्त राजाओं का उल्लेख तथा उनके आश्रित कवियों का परिचय प्रस्तुत करना समय साध्य है।

गुप्तकाल संस्कृत साहित्य रचना का स्वर्ण युग था। समुद्रगुप्त केवल विजेता ही नहीं अपितु वह विविध कला विशारद एवं कला प्रिय था साथ ही वह उच्च काव्य निर्माण करने में प्रतिभा सम्पन्न समर्थ कवि था। यद्यपि समुद्रगुप्त द्वारा विरचित काव्यों का यत् किञ्चित् भी परिचय नहीं प्राप्त होता है तथापि उसके एक उत्कीर्ण शासन पत्र से ज्ञात होता है कि वह पण्डितों का आश्रय दाता काव्यों का रचयिता तथा 'कविराज' की उपाधि से अलंकृत था जैसा कि निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट होता है कि 'विद्वज्जनो-

पजीव्यानेक काव्य क्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य ....' समुद्रगुप्त का पौत्र कुमारगुप्त प्रथम भी कला प्रिय एवं कवियों तथा विविध कलाविदों का आश्रय दाता था। कतिपय समालोचक विद्वान इसी की सभा के राजकवि कालिदास थे ऐसा स्वीकार करते हैं।

मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक का नाम राजाओं में सर्व प्रथम नाटककार के रूप में स्मरण किया जाता है। मृच्छकटिक नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि मृच्छ कटिक का रचयिता राजा शूद्रक ही था। जिसका समय ईसा की तृतीयशताब्दी था। संस्कृत साहित्य परम्परा राजा शूद्रक को मृच्छकटिक का रचयिता मानती है। परन्तु शूद्रक नामक यह राजा कब और कहां हुआ? यह एक विवाद ग्रस्त जटिल प्रश्न है। ९०० ई० पूर्व राजशेखर के अनुसार राजा शूद्रक काव्य प्रतिभा सम्पन्न, विद्वानों कवियों तथा विविध कला विशारदों के आश्रयदाता एवं उच्च कोटि के कलाकार थे :

राजा हर्ष और उनके उत्तरवर्ती के कवि एवं राजा—हर्ष सातवीं शताब्दी में विद्यमान थे। ये महाकवि एवं कवियों तथा कलाकारों के आश्रय दाता थे। हर्ष के समकालीन पल्लव वंशी राजा महेन्द्र विक्रम वर्मा ने 'मत्त-विलास' नामक प्रहसन का प्रणयन किया था। कन्नौज के राजा यशोवर्मा ने ७३५ ई० के लगभग रामाभ्युदय' नामक नाटक की रचना की थी महाकवि उत्तर रामचरित के प्रणेता भवभूति यशोवर्मा के ही सभा के राजकवि एवं आश्रित कवि थे। नेपाल के राजा जयदेव, के द्वारा आठवीं शताब्दी में लिखे गये पांच श्लोक एक शिला लेख में उत्कीर्ण हैं। कलचूरि के राजकुमार मायुराज के द्वारा रचित 'उदात्त राघव' नामक नाटक का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि अभी इस नाटक की कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। दक्षिण भारत के शासक अमोघ वर्ष भी स्वयं काव्य कर्ता तथा कवियों के आश्रयदाता थे। १० वीं शताब्दी में राजा मुञ्ज, एक स्वयं कवि और कवियों के आश्रय दाता थे। ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा भोज स्वयं कवि और कवियों के सम्मान कर्त्ता महान् आश्रय दाता थे। इसी समय सोड्ढल ने उदयसुन्दरी कथा में मुञ्ज, भोज, श्री हर्ष और विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के नामों का श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में स्मरण किया है। १२ वीं

ताब्दी में शाकाम्भरी के राजा विग्रह राजदेव के अजमेर में प्राप्त शासन
त में 'हरकेलि' नामक नाटक के कुछ अंश सुरक्षित है। विग्रह राज की
व्य कला की तुलना कालिदास की काव्य-कला से भी करते है।

हर्ष का प्रतिभा सम्पन्न कवित्व रूप—हर्ष एक प्रतिभा सम्पन्न महाकवि
। इस विषय में कोई सन्देह नही किया जा सकता है। बाणभट्ट ने हर्ष का
वि के रूप में उल्लेख किया है। बाण ने हर्ष चरित की प्रस्तावना में
म्न प्रकार लिखा है कि—

आढ्यराजकृतोत्साहै हृदयस्थैः स्मृतैरपि।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते॥

अर्थात् आढ्यराज (श्री हर्ष) के हृदय में स्थित उत्साह, कविकर्म, शौर्य
ादि गुणों को स्मरण करने मात्र से जिह्वा मानों अन्दर की ओर खीची
ने से कविता करने में प्रवृत्त नही होती। हर्ष के अद्भुत कवित्व का उल्लेख
ते हुये बाण ने लिखा है कि 'अपि चास्य —— कवित्वस्य वाचः——न
ाप्तो विषयः अर्थात् जिस प्रकार हर्ष ने प्रताप का वर्णन करने के लिये
पय का अभाव है उसी प्रकार हर्ष की काव्य प्रतिभा को व्यक्त करने के
ये शब्द पर्याप्त नही है। हर्ष की कवित्व शक्ति की मौलिकता का संकेत
रते हुये बाण ने लिखा है कि—'**काव्य कथास्वपीतममृतमुद्वमन्तम्**'।

सातवी शताब्दी में चीनी यात्री इत्सिग ने लिखा है कि, राजा शीलादित्य
र्थात हर्ष, बौद्ध साहित्य में हर्ष का बहुधा शीलादित्य के नाम से सम्बोधन
या गया है) अत्यधिक साहित्य प्रेमी था, अनेक काव्यों की रचना करने
अतिरिक्त राजा शीलादित्य ने 'बोधिसत्वजीमूतवाहन, जिसने नाम के
ले अपनी बलि दी थी, की कथा को पद्यबद्ध किया था। यह कथा संगित
बांधी गई थी और उसने नृत्य और अभिनय के साथ एक मण्डली से
का प्रदर्शन कराया था। इस प्रकार उसने अपने समय मे इस कथा को
कप्रिय बनाया था।' इस कथन से निश्चित रूप से इत्सिग ने हर्ष कृत
गानन्द नाटक' का संकेत किया है।

काश्मीर के राजा जयापीड (८०० ई०) के आश्रित कवि दामोदर गुप्त ने
र्ष कृत रत्नावली नाटिका, के उद्धरणों को उद्धृत करते हुये 'रत्नावली-

नाटिका को हर्ष की रचना स्वीकार किया है। जयदेव ने १३वीं शताब्दी के लगभग हर्ष का उल्लेख करते हुये लिखा है कि—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरः।
भासो हासः कविकुल गुरुः कालिदासो विलासः॥
हर्षो हर्षोहृदयसतिः पञ्चवाणस्तु वाणः।
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय॥

सत्रहवीं शताब्दी में मधुसूदन ने वाण तथा मयूर को हर्ष की सभा का राज कवि वताते हुए हर्ष को कवि श्रेष्ठ और रत्नावली नाटिका का प्रणेता कहा है—

"मालवराजस्योज्जयिनी राजधानीकस्य कविजन मूर्धन्यस्य रत्नावल्याख्य नाटिका कर्तुर्महाराज श्री हर्षस्य।"

"सुभाषित रत्न भाण्डागार" में संगृहीत श्लोकों में भी हर्ष का नाम लोक प्रसिद्ध कवियों की पक्ति में स्मरण किया गया है। इसके अतिरिक्त हर्ष के प्राप्त दानपात्रों में भी हर्ष की कवित्व शक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है" वंशखेड़ा, और मधुवन के दो दानपत्र उपलब्ध हुये हैं जिनमें भूदान का उल्लेख है और उनमें हर्ष के हस्ताक्षार है जिससे यह प्रतीत होता है कि हर्ष लेखन कला में परम प्रवीण थे। इन दानपत्रों में कुछ श्लोक अंकित हैं जिनमें राज्यवर्धन की विश्वासघात पूर्ण हिंसा का भावुकतापूर्ण वर्णन प्राप्त होता है जो श्लोक स्वयं हर्ष कृत प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि—हर्ष अनेक कवियों तथा कलाविदों के आश्रयदाता थे और स्वयं एक प्रतिभासम्पन्न प्रतिष्ठित कवि थे और रत्नावली नाटिका उनकी एक सफल नाटिका है। अतः हर्ष-के कवित्व पर किसी को किञ्चित् भी सन्देह नहीं हो सकता है।

प्रश्न ३ हर्ष के आश्रित कवियों का समीक्षात्मक विवेचन करते हुए उनका स्थान निर्धारित कीजिए:—

यह तो सभी लोग सहर्ष स्वीकार करते है कि—हर्ष की सभा में वाणभट्ट तथा मयूर नामक कवि राज कवि के रूप में रहते थे और हर्ष एक प्रतापी,

वीर, उत्साही, उदार योग्य शासक तथा प्रतिभा सम्पन्न,, कवि थे। उनके आश्रय में अनेक विद्वान् कलाकार, एवं कवि रहते थे। इसके अतिरिक्त उस समय अनेक ऐसे कवि भी थे जो उनके आश्रित नहीं थे। बाणभट्ट तथा मयूर भट्ट तो मुख्य रूप से हर्ष के आश्रित राजकवि थे। दिवाकर अथवा मातंग दिवाकर भी हर्ष के आश्रित राजकवि थे। राजशेखर के कथनानुसार दिवाकर भी सभा के बाणभट्ट के समान आश्रित एवं सम्मानित राजकवि थे। जैसा कि राजशेखर के शब्दों में निम्नप्रकार देखिए—

"अहो प्रभावः वाग्देव्याः यन्मातङ्ग दिवाकरः।
श्री हर्षस्याऽभावत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥"

तथापि यह आज तक स्पष्ट नहीं हो सका है कि यह दिवाकर कहाँ का निवासी था, तथा इसकी कौन कृति है। मम्मट के काव्यप्रकाश की पंक्ति के अनुसार धावक कवि भी हर्ष के आश्रित एवं पुरस्कृत थे। काव्यप्रकाश की वह पंक्ति इस प्रकार है कि श्री हर्षादेवावकादीनामिवधनम्" किसी एक अन्य कवि ने भी हर्ष की उदारता का उल्लेख करते हुए लिखा है—कि श्रीहर्षो विस्तार "गद्यकवये बाणाय वाणी.लम्"।

संस्कृत-साहित्य में श्री हर्ष का स्थान, एवं मूल्यांकन—हर्ष एक प्रतिभा सम्पन्न समर्थ कवि थे बाणभट्ट उनकी सभा के राजकवि थे उन्होंने "हर्ष चरित" में हर्ष को विद्या प्रेमी, एवं कलाविदों का आश्रयदाता प्रतिपादित किया है। जयदेव ने हर्ष को कविता कामिनी का हर्ष कहा है और सोड्ढल ने हर्ष को 'गीर्हर्ष' कहा है। हर्ष ने स्वयं अपने को "निपुण कवि" कहा है। रत्नावली नाटिका में उन्होंने लिखा है कि "अपूर्ववस्तुरचनालंकृतः" कहकर अपनी कवित्व-शक्ति का उल्लेख किया है।

संस्कृत साहित्य समीक्षकों ने हर्ष को केवल "रत्नावली नाटिका" कार ही मानते हैं क्योंकि इनकी रत्नावली नाटिका ही पाठ्यक्रम में निर्धारित की गई है, हर्ष की नाट्यकला के अतिरिक्त उनके काव्य गुणों की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि हर्ष एक श्रेष्ठ कवित्व प्रतिभा सम्पन्न समर्थ कवि थे। भाषा, रचना शैली, तथा भावाभिव्यक्ति पर दृष्टि पात करने पर प्रतीत होता है कि हर्ष ने अपने समकालीन महाकवि बाणभट्ट की रचना शैली का

अनुकरण न करते हुए अपने पूर्ववर्ती कविकुल गुरु कालिदास की रचना शैली का अनुकरण किया है, और अपने नाटकों में भास की शैली का भी अनुकरण करने का प्रयास किया है, हर्ष के नाटकों में कालिदास के नाटकीय तत्वों का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि उन्होंने अपने नाटकों में कालिदास के समान यथा स्थान नगर वर्णन, प्रासाद एवं धारागृह वर्णन, प्रातःकाल, सन्ध्या एवं मध्यान्ह वर्णन, वन, उपवन, आश्रम एवं पर्वत तथा युद्धादि वर्णन आदि वर्णन आकर्षक, प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक वर्णनों का सफल चित्र चित्रित किया है। हर्ष की रचना में प्रणय चित्र एवं युद्धादि के भयावह वर्णन सफलता के साथ चित्रित किये गये हैं। उनकी भाषा एवं कल्पना वर्ण्य विषय के सर्वथा अनुकूल ही है। नायिका सागरिका के चित्र का अवलोकन करते ही नायक के हृदय पर जो प्रभाव अंकित हो जाता है उसका मार्मिक वर्णन करते हुए हर्ष ने निम्नप्रकार लिखा है कि—

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ॥

इसी प्रकार युद्ध वर्णन के प्रसंग में युद्ध वर्णन के अनुकूल समास बहुल दीर्घकाय पदावली का प्रयोग करते हुए लिखा है कि—

अस्त्रव्यस्त शिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमाङ्गे क्षण
व्यूढासृक्सरित् स्वनत्प्रहरणै नर्मोद्वलद्वह्निनि।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गे प्रतीपीभव—
न्ने के नैव रूमण्वता शरशतैर्मत्तो द्विपस्थो हतः ॥

इसके अतिरिक्त हर्ष अपनी रचना में अलंकारों का (श्लेष, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि का) समुचित प्रयोग करते हुए रचना को गतिशीलता प्रदान की है कहीं भी उनके अलकार रचना की गतिशीलता में बाधक नहीं होते हैं।

हर्ष की नाट्य कला—यद्यपि हर्ष कृत नाटकों की कथा वस्तु मौलिक नहीं है। तथापि उनके नाटकों पर कालिदास तथा भास के घटना संयोग, वस्तु योजना, एवं भाषा शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। हर्ष ने प्राचीन कथावस्तु को नाटकीय परिवेश में परिवर्तित करके रचना सौष्ठव एव गतिशीलतक प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। परवर्ती कवियों तथा

नाट्य शास्त्रियों ने मुख्य रूप से हर्षकृत रत्नावली, नाटिका और भट्टनारायण कृत वेणी संहार से ही नाट्यांगों के उदाहरणों को उद्धृत किया है। हर्ष की रत्नावली में नाट्यांगों के प्रायः सभी उदाहरण सरलता, से प्राप्त हो जाते हैं।

कथावस्तु की नाटकीयता के दृष्टिकोण से समीक्षा, करने पर हर्ष कृत "प्रियदर्शिका" और "रत्नावली" दोनों ही नाटिकाएँ सफल कृतियां हैं। रत्नावली में ऐन्द्रजालिक का दृश्य अति मनोरञ्जनपूर्ण, प्रभावोत्पादक तथा गतिशीलता के सर्वथा अनुकूल है। राजमहल में अग्निदाह की घटना की योजना, करके सागरिका को मुक्त कराने, और उसकी पहचान के लिए सुअवसर चुना है यह योजना सर्वथा नाटकीयता के अनुरूप ही है। सारिका पिजड़े से निकलने, सागरिका और सुसंगता के वचनों को दुहराने तथा राजा के द्वारा सुने जाने की कल्पना सर्वथा अनुपम एवं नाटकोचित है। जिससे कथावस्तु में मनोरञ्जकता एव गति शीलता निखर उठी है। सागरिका वेष परिवर्तन करके राजा से मिलने का प्रयत्न करती है और अभिसार के लिए प्रस्थान करती है यह कल्पना भी सर्वथा नाटिका के अनुकूल है।

प्रियदर्शिका में गर्भाङ्क की घटना भी नायिका प्रियदर्शिका को दो प्रणय कथाओं में परिणत करके सामाजिकों के तथा पाठकों के हृदयों को सहसा आकर्षित कर लेती है तथा मोहित कर देती है।

हर्ष की तृतीय रचना नागानन्द नाटक है। यह नाटक रत्नावली तथा प्रियदर्शिका के विषय से सर्वथा भिन्न है। इस नाटक का मुख्य लक्ष्य जीवन की उदात्तता प्रकाशित (स्पष्ट) करना प्रतीत होता है। वस्तु योजना की दृष्टि से नागानन्द नाटक सफल नाटक नहीं कहा जा सकता है। नागानन्द के प्रथम तीन अंको में गन्धर्व कुमार जीमूत वाहन और सिद्ध कन्या मलयवती की प्रणय कथा का रोचक चित्रण किया गया है। चतुर्थ तथा पञ्चम अङ्कों में जीमूत वाहन के आत्म त्याग अर्थात् वलिदान तथा पक्षियों के राजा गरुड के पश्चात्ताप का चित्रण किया गया है। परन्तु प्रथम तीन अंकों की कथा से अग्रिम दो अंकों की कथा—का कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। यदि श्री हर्ष नागानन्द नाटक की कथा को तृतीय अंक पर ही समाप्त कर देते तो

अवश्य नागानन्द रत्नावली और प्रियदर्शिका के समान प्रणय कथा का सफल नाटक कहा जा सकता था।

हर्ष की नाट्य कला पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव—हर्ष स्वभाव से कलाप्रिय एवं विद्या प्रेमी थे अतः उन्होने निःसन्देह पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों का रसास्वादन किया होगा और पूर्ववर्ती कविवों की काव्य कला से प्रेरणा प्राप्त की होगी। संस्कृत साहित्य समीक्षकों ने हर्ष की कृतियों का विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला है—कि—हर्ष की काव्यकला पर कालिदास की काव्य कला का प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कवि कुल गुरु कालिदास कृत "मालविकाग्नि-मित्रम्" और "विक्रमोर्वशीयम्" नासक नाटकों की रचना का प्रभाव हर्ष की 'प्रियदर्शिका" और "नागानन्द" नाटक पर स्पष्ट रूप से देखा जाता है। इसके अतिरिक्त हर्ष की "रत्नावली" पर भी कालिदास की काव्य कला का प्रभाव पड़ा है।

श्री हर्ष की अन्य कवियों से तुलना—कतिपय समीक्षकों ने हर्ष की तुलना करते हुए कहा है—कि—यदि कालिदास और भवभूति की काव्य कला से हर्ष की तुलना करें तो हर्ष द्वितीय श्रेणी के कवि प्रतीत होते हैं। तथा मुद्रा राक्षस के प्रणेता विशाख दत्त, तथा वेणी संहार के रचयिता भट्ट-नारायण से श्री हर्ष उच्च कोटि के नाटक कार माने जाते हैं। डा० कीथ ने अपने ग्रन्थ "सस्कृत ड्रामा" में कहा है कि कालिदास के साथ हर्ष की तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि हर्ष को उतना अधिक गौरव नहीं प्राप्त हुआ है जितना हर्ष को नाटककर्त्ता के रूप में प्राप्त होना चाहिए था।

Mparsion with Kalidasa is doulotless the cause why Harsa has tended to receive less praise then is due to his dramas."

अन्तः पुर के गुप्त प्रणय चित्र का चित्रण करने में हर्ष कालिदास से भी आगे बढ़ गये हैं तथापि हर्ष प्रणय लीला के गम्भीर पक्ष का चित्रण करने मे सफल नहीं कहे जा सकते हें क्योंकि सागरिका के प्रति राजा की कामुक चेष्टाओं से कुपित होकर वासवदत्ता के चले जाने पर उदयन भयभीत होकर विदूषक की भर्त्सना करता हुआ कहता है—कि—कभी इससे पहले न किये जाने वाले मेरे इस अपराध को देखकर, मेरे अपराध को न सहन करने वाली

प्रिया वासवदत्ता आज निःसन्देह अपने प्राणों का परित्याग देगी क्योंकि उत्कृष्ट प्रेम, अन्य के साथ प्रेम सम्बन्धी अपराध को सहन नहीं कर पाता है इसी भाव को व्यक्त करते हुए हर्ष ने निम्न प्रकार लिखा है—

समारूढा प्रीतिः प्रणय-बहुमानादनुदिनं,
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया।
प्रिया मुञ्चन्त्यद्य स्फुटमहसना जीवितमसौ,
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमवि सह्यं हि भवति॥

इस प्रकार उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि—कालिदास और भवभूति के पश्चात् हर्ष का संस्कृत साहित्य के नाटककारों में द्वितीय स्थान प्राप्त है। निःसन्देह हर्ष प्रतिभा सम्पन्न कलाप्रिय, उदार, विद्या प्रेमी और सफल कवि तथा नाटककार हैं।

प्रश्न ४—हर्ष कृत 'रत्नावली' नाटिका के कथानक का समीक्षात्मक परिचय प्रस्तुत कीजिये ?

(आगरा विश्व विद्यालय १९५५)

हर्ष द्वारा प्रणीत रत्नावली नाटिका के आरम्भ में सूत्रधार भूमिका के अन्दर वर्ण्य कथानक का संकेत करते हुए उदयन और रत्नावली के प्रणय का निर्देश करता है। इसके पश्चात् उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण रंगमञ्च पर प्रवेश करता है। उदयन योग्य राजा के सभी गुणों से युक्त है यथा वह वीर, अदम्योत्साही, प्रजा-वत्सल एवं सौन्दर्योपासक था। उज्जयिनी के भू-पति प्रद्योत की सुता वासवदत्ता उदयन की पटरानी (प्रधान रानी) थी। सिंहल देश के अवनी-पति विक्रम बाहु की पुत्री रत्नावली भी इसकी रानी थी। सिंहल देश के नरेश विक्रमबाहु वासवदत्ता के मामा (मातुल) हैं। रत्नावली के वैवाहिक शुभ-वेला के विषय में भविष्य वक्ताओं की यह भविष्य-वाणी थी कि इस राजकुमारी का विवाह किसी चक्रवर्ती सम्राट् से होगा। परन्तु यह घोषणा यौगन्ध रायण ने सुन रखी थी। इसी कारण यौगन्धरायण सिंहल देश के राजा से रत्नावली का विवाह उदयन के साथ करने की भिक्षा मांगता है। इसको सुनकर राजा विक्रमबाहु परेशानी में पड़ गया कि वह कैसे रत्नावली का विवाह उदयन के साथ करे और किस प्रकार सम्बन्ध को अस्वीकार

करे। विक्रमबाहु ने यह सोचा कि—अपनी भाञ्जी वासवदत्ता को सपत्नी के होने से कष्ट हो जायेगा और किसी योग्य एवं वयूरूप वर के साथ विवाह को अस्वीकार भी नहीं बन पड़ता। समय पारखी यौगन्धरायण वहां की सारी स्थिति का ज्ञान करके युक्ति से काम लेता है कि लावाणक में वासवदत्ता के जलने का अशुभ समाचार फैलाकर बाभ्रव्य को विक्रम बाहु के पास रत्नावली को मांगने के लिए भेजता है। परन्तु भाग्य की विडम्बना के कारण सागर में नौका जलमग्न हो जाती है। इस नौका में बैठा हुआ सिंहल का मन्त्री भी जल-लीन हो जाता है। तब रत्नावली किसी काष्ठ-फलक के सहारे सागर पार कर लेती है। सिंहल देश से लौटकर आने वाले व्यापारियों ने रत्नावली को उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण को सौंप दिया यौगन्धरायण उसका नाम परिवर्तन करवा कर सागर से प्राप्त होने के कारण सागरिका रखकर वासवदत्ता की चेटी बनाकर उसके (वासवदत्ता के) पास भेज देता है।

कौशाम्बी में गतवर्षों की तरह वसन्तोत्सव का समारोह मकरन्दोद्यान के अशोक-वृक्ष के नीचे बड़ी धूम-धाम से सम्पादित हुआ। जिसमें उदयन राजा को आमन्त्रित किया जाता है। उसी उत्सव में राजा भी अपने मित्र विदूषक के साथ उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए जाता है। और वासवदत्ता भी अपनी सखियों के साथ वहां जाती है परन्तु वासवदत्ता वहां दासियों के बीच में स्थित सागरिका को दासी के द्वारा सुरक्षित वापस भेज देती है। वासवदत्ता यह नहीं चाहती है कि उदयन सागरिका को देखे, सागरिका वहां से प्रस्थान करती है। परन्तु वह लता समूह की ओर से कामदेव की अर्चना के उत्सव को देखती है। सागरिका राजा उदयन के स्वरूप में साक्षात् कामदेव के दर्शन करती है और पुष्पाञ्जलि भी अर्पित करती है। बस यही प्रथम-दर्शन से सागरिका कामदेव वेषधारी उदयन पर आसक्त हो जाती है।

द्वितीय अंक में सागरिका उदयन से मिलने के लिये लालायित होने लगती है। वह अपने स्नेही चित्त की व्याकुलता का मनोरञ्जन चित्रकला के द्वारा करती है अर्थात् चित्र बनाकर अपना मन का बहलाव करने लगी। इस समय सागरिका की सखी सुसंगता वहां आती है। वह सागरिकता की मनो दशा के वैषम्य को समझ जाती है तथापि उससे मनो दशा के विषय में पूछती है तो

सागरिका ने कहा—मैंने इस मदनोत्सव की वेला अवलोकित मकरध्वज का चित्र बनाया है। यह सुनकर सुसंगता चित्र के समीप में ही सागरिका का भी चित्र बना देता है, जिसमें सागरिका कुछ अप्रसन्नता व्यक्त करती है तो सुसंगतता ने कहा कि मैंने यह चित्र रति का जनाया है। तुम अप्रमुदित क्यों हो रही हो ? पंजरस्थ सारिका सागरिका और सुसंगता के इस वार्तालाप को पूर्ण रूपेण सुन रही हैं। इसी बीच अन्तः पुर का पालतू बन्दर आ जाता है तो सुसगता और सागरिका दोनों सहसा भाग जाती हैं और वानर सरिका के पिंजड़े को खोलकर चला जाता है। सरिका भी अपने पिंजड़े से भाग जाती है। सुसंगता उसको पकड़ने की चेष्टा करती है। परन्तु इसी बीच में सारिका उस संताप को अक्षरशः कह डालती है भाग्य वश राजा उस सम्पूर्ण वृतान्त को सुन लेता है। दोनों सखियों से डरकर भागने से वह चित्र केलों के समूह में छूट जाता है। उस युगल चित्रावलोकन से राजा उदयन सम्पूर्ण आशय को समझ जाता है। फिर राजा विदूषक के साथ वहीं बैठकर सागरिका से मिलने की युक्ति पर संलाप करते हैं सुसंगता राजा के समीप आती है, राजा से सागरिका की मानसिकदशा का परिचय देती है। सुसंगता सागरिका को नृप से मिला देती है। परन्तु उसी समय वासवदत्ता राजा का अन्वेषण करती हुई वहां जा जाती है। उसे राजा और सागरिका के युगल चित्र को देखते ही क्रोधित हो जाती है फिर क्या था ? राजा उदयन वासवदत्ता को मनाने का यत्न भी करता है परन्तु वह मानती नहीं है और शिरः पीड़ा का वहाना लेकर वहाँ से चली जाती है।

तृतीय अंक में उदयन का प्रेमी चित्र निखर कर प्रत्यक्ष आ जाता है। वे सागरिका के विषय में चिन्ताकुल रहते हैं। विरह से उदयन का शरीर अधिक दुर्बल हो जाता है। राजा का सखा वसन्तक उनके विषय में अधिक चिन्तातुर रहता है और उदयन के दौर्बल्य का कारण सागरिका है। इससे यह स्पष्ट रूप से सुसंगता से कह देता है। सुसंगता विद्वषक से राजा और सागरिका के सम्मिलन का उपचार बताती है कि मैं उसे वासवदत्ता बना दूंगी। और सागरिका मैं स्वयम् स्वर्ण माला के वस्त्र धारण करके अन्तः पुर से निकल

कर सायं काल की शुभवेला में माधवीलता (लता विशेष) के कुन्ज में चली जाऊंगी। उसी स्थान पर राजा को उपस्थित रहना चाहिए। वहां माधवी लता कुंज में राजा और सागरिका का मिलन हो जायेगा। राजा उदयन इस युक्ति के अनुसार माधवी लता में पहुंच जाता है। किन्तु सुवर्ण माला के साथ वासवदत्ता सागरिका के एकान्त में मिलने का समाचार प्राप्तकर वहीं पहुंच जाती है। कामातुरउदयन वासवदत्ता को सही रूप में न पहचान कर सागरिका समझ लेता है। प्रेम के उद्गार अभिव्यक्त करने लगता है। वासवदत्ता कुछ देर तक सुनती रहती है और असहनीय स्थिति मे आकर घूंघट हटा देती है। राजा अपने को धोखे में समझकर भ्रम दूर होने पर वासवदत्ता को मानने का प्रयत्न करता है परन्तु वासवदत्ता अप्रसन्न होकर वहाँ से चली जाती है। राजा की मनोदशा बड़ी शोचनीय एवं चिन्ता क्रान्त हो जाती है। सागरिका इस घटना की सूचना को जानकर अत्यन्त दुःखी होती है। वासवदत्ता से भयाकुल वह आत्म हत्या करने का यत्न करती है, किन्तु राजा और विदूषक अचानक प्रवेश करके सागरिका के लतापाश को छीन लेते हैं जिससे सागरिका आत्म हत्या के प्रयत्न में असफल हो जाती है। इधर भावुक चित्ता वासव दत्ता के चित्त में अपने इस व्यवहार पर ग्लानि उत्पन्न होती है और राजा को प्रसन्न करके के लक्ष्य से माधवीलता कुन्ज में आती है। परन्तु वहाँ सागरिका और राजा उदयन दोनों पारस्परिक प्रणयालाप कर रहे थे यह देखकर वासवदत्ता के कोपानल में घी पड़ जाता है और लपटें निकलने लगती हैं। अतः सागरिका को वहां से पकड़ कर ले जाती है। उसे अज्ञात स्थान पर उसे बन्द कर देती है। इसके पश्चात् यह प्रचार करवाती है कि सागरिका उज्जयिनी भेज दी गई है।

चतुर्थाङ्क में सुसंगता सागरिका के इस अज्ञातवास रूपी आपत्ति से अन्यमनस्क हो जाती है। सागरिका ने एक माला विदूषक को देती है। सागरिका के उज्जयिनी जाने का समाचार राजा को देती है। राजा सन्तप्त होकर सागरिका के विषय में ही सोचने लगता है। उसी समय विरह से व्याकुल राजा को मन्त्री रुमण्वान् का भाञ्जा विजय वर्मा राजा की सभा में आकर कोसल देश पर विजय प्राप्ति का समाचार देता है। अपनी पति की मनोदशा

में कुछ स्वाभाविकता आती है। यौगन्धरायण के प्रयत्नों से एक ऐन्द्रजालिक (जादूगर) राजा के सामने आता है । अपना खेल दिखाता है इसी समय वासवदत्ता का आगमन होता है। इस जादूगर के खेल को देखते हुए व्योम में सभी देवी देवताओं के दर्शन और दिन में ही चन्द्र निकल आता है। इसी समय सिंहल देश के भूपाल का मन्त्री और वाभ्रव्य कञ्चुकी वहां आकर उदयन से वात करने लगते हैं। इसी वीच में अचानक अन्तःपुर में आग लगने का कोलाहल सुनाई पड़ता है। आग की उच्छृंखल लपटे उठने लगती हैं। वासवदत्ता अचानक सागरिका का ध्यान आता है। वह राजा से सागरिका के प्राणों की रक्षा के लिये प्रार्थना करती है। उदयन उठकर अनल से जलते हुये प्रसाद में प्रवेश करके सागरिका को उद्धार करके ले आता है, ठीक उसी समय अनल भी प्रशान्त हो जाता है। सिंहल देश के भू-पाल के प्रधानमन्त्री और वाभ्रव्य कञ्चुकी उस सागरिका को देखकर पहचान लेते हैं। यौगन्धरायण अपने स्वामी के उद्देश्य को कहता है। और क्षमायाचना करता है। वासवदत्ता सागरिका को अपनी वहन रत्नावली जानकर उसको स्वयं दुःख देने पर पश्चाताप करती है और अलंकारों से सागरिका को अलंकृत करके भू-पाल से उसको ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करती है। इस पर भू-पाल प्रसन्नता के साथ उस सिंहल देश के राजा की सुपुत्री रत्नावली को स्वीकार करता है। इसमें वासवदत्ता का परित्याग, और उसकी भावुकता, मन्त्री यौगन्धरायण का प्रतिभा-वैभव, सागरिका का नैसर्गिक प्रणय और राजा की सहृदयता और प्रणय भावना की अभिव्यक्ति दर्शनीय है।

प्रश्न ५—रत्नानली नाटिका के रूप एवं रचना की समीक्षा करते हुये सिद्ध कीजिये कि रत्नावली एक सफल नाटिका है।

(आगरा वि० वि० १९५५, ६२, मेरठ वि० वि० १९६८)

जब हर्ष प्रणीत इस रत्नावली नाटिका के रूप एवं उसके रचना पर आलोचनात्मक ढंग से दृष्टिपात करते हैं तो इसमें एक नाटिका में होने वाले सफल नाटकीय तत्व समाविष्ट प्राप्त होते है, जो एक नाटिका के लिये आवश्यक होते

हैं। दशरूपक के प्रणेता के मतानुसार नाटक और प्रकरण से मिश्रित उप रूपक को नाटिका कहते हैं। उप रूपकों के १८ भेदों के अन्तर्गत नाटिका भी एक भेद है। नाटिका में स्त्रीपात्रों की प्रधानता और कौशिकी वृत्ति का प्राधान्य रहता है और विमर्श कहीं-कहीं अत्यल्प मात्रा में होता है। शेष अन्य चार सन्धियों की अभिव्यक्ति मुख्यतः की जाती है। दश रूपककार ने अपनी इस कृति दशरूपक में तृतीय प्रकाश में नाटिका की प्रमुख बातों का उल्लेख करते हुए कहा है कि—

देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥३।४५॥
गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसंगमः।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्याचाति मनोहरा ॥३।४६॥
अन्तः पुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः।
अनुरागोऽ मनागस्यो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ॥३।४७॥
नेता तत्र प्रवर्तेत देवी त्रासेन शंकितः।
कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्कैरिव नाटिका ॥३।४८॥

भाव यह है कि उच्च कुलोत्पन्न प्रमुख रानी वाचाल नायिका ही नाटिका में नायिका होती है। वही महिषियों में ज्येष्ठा होती है, प्रकृति से गम्भीर और पग-पग पर सम्मान करने वाली होती है और द्वितीया नायिका से मिलने के लिये उत्कण्ठा रहती है। वह भी राजकुमारी ही होती है। यह राजकुमारी अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त, चित्त को हरण करने वाली मुग्धा नायिका होती है। वह अपने सभी गुणों से युक्त होती है। ये राजकुमारियाँ उसी (प्रासाद) में रहती है जिसमें नायक भी रहता है। किसी उत्सव आदि के सन्दर्भ में नायक इसको देखकर उस पर मुग्ध हो जाता हो और वह नायक महारानी से डरता हुआ, उस राजकुमारी से प्रेम करता है। यह प्रेम शनैः शनैः दोनों के चित्तों में वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। कौशिकी वृत्ति के ये चार भेदों का निर्वाह एक साफल्य के साथ इस नाटिका में होना चाहिये और नाटिका का अंकों में विभाजन भी आवश्यक है उनकी संख्या चार तक अपेक्षित होती है।

भरत मुनि ने नाटिका की गिनती दश रूपक में नहीं की है अपितु नाटिका को ११ वाँ रूपक, एक अन्य भेद माना है परन्तु नाटिका के स्वातन्त्र्य को

स्वीकार नहीं किया है। वे (भरत मुनि) नाटिका को रूपक और प्रकरण के अन्तर्गत ही स्वीकार करते है। भरत मुनि ने आगे चलकर रामचन्द्र और गुप्त चन्द्र ने अपनी कृति 'नाट्य दर्पण' में नाटिका और प्रकरण को इन दोनों भेदों से स्वतन्त्र रूप से स्वीकार करते हैं और रूपकों की संख्या १२ प्रतिपादित की है। 'साहित्य-दर्पण' में विश्वनाथ इन दोनों (१) नाटिका और (२) प्रकरणिका को उप रूपक स्वीकार किया है। दश रूपक के प्रणेता धनिक तथा धनञ्जय ने भी नाटिका के स्वतन्त्र रूप को नही माना है। दश रूपक के लेखक के मतानुसार रूपको के भेदक तत्व अपनी कृति में चित्रित किये हैं। दश रूपक के मतानुसार रूपकों के विभिन्न भेदक तत्व (१) कथावस्तु (२) नायक और (३) रस हैं। नाटिकाओं में प्रतिपादित होने वाले ये तीनों तत्व नाटक और प्रकरण से अन्य नही हैं। इसी को आधार मानकर भरत मुनि ने नाटिका को नाटक और प्रकरण के अन्तर्गत ही माना है। इसकी अलग से कोई पृथक् सत्ता स्वीकार नही की है।

इस प्रकार के विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुंचे कि नाटिका की कथा कवि-द्वारा कल्पित होती है। यदि गाम्भीर्य से विमर्श पूर्वक रत्नावली की कथा पर देखे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस नाटिका की कथा कवि की उच्च कल्पना ही है। नाटिका के लक्षण के अनुरूप इसमें चार अंक और स्त्रीपात्रों की प्रमुखता है। जिनके नाम इस प्रकार से हैं—(१) वासवदत्ता (२) रत्नावली (सागरिका) (३) सुसंगता (४) काञ्चन माला (५) वसुन्धरा और (६) निपुणिका आदि हैं।

इस नाटिका का नायक धीरललित है वह मृदु एवं मितभाषी (कम बोलने वाला) है। साथ ही अनेक कलाओं में प्रवीण है। सर्व प्रथम मदनोत्सव के समय सागरिका उदयन को मकरध्वज (कामदेव) के सदृश देखती है, उस पर मुग्ध हो जाती है। तत्पश्चात् कदली-गृह में बैठकर उदयन का चित्र बनाकर मन बहलाती है। सुसंगता की सहायता से सागरिका का राजा से क्षणिक मिलन होता है। यह अल्प समय का प्रेम इस नाटिका में पूर्णरूपेण मुखरित हो उठा है। वस्तुतः महाकवि हर्ष वर्धन ने अपनी इस उक्ति "लोकेहारिच्च वत्सराज चरितम्" को पूर्ण सिद्ध करके दिखाया है।

नाटिका का केन्द्र-बिन्दु रनिवास में रहने वाली महिषी के कुलोत्पन्न कोई संगीत-कला-प्रवीण अनुरागवती कन्या ही नायिका होती है । इस रत्नावली नाटिका की नायिका महारानी वासवदत्ता की भगिनी (रत्नावली) है। वह चित्रकला में अत्यन्त कुशल, स्नेही प्रकृति वाली एवं भावुक हृदया है। यह रत्नावली मदनोत्सव के समय पर नायक उदयन को साक्षात् मकरध्वज की भांति देखती है और स्वयं को उसके अधीन या उसके हाथों में गई हुई मानती है । नाटिका के लक्षणों के अनुसार यह रत्नावली ही नायिका है और महाराज उदयन इसके नायक है परन्तु उदयन महारानी वासवदत्ता से भयभीत हैं और रत्नावली से छुप छुपकर प्रेम करते हैं । अतः महाराज उदयन ही इस नाटिका का नायक है और उच्च कुलोत्पन्न महारानी वासवदत्ता जो अत्यन्त ही प्रगल्भा (बाचाल) नायिका है । यह वासवदत्ता प्रत्येक पग-पग पर सम्मान करती है। रत्नावली की रचना के साफल्य में वासवदत्ता ही सहायक सिद्ध होती है । रत्नावली (सागरिका) को प्रणय-साफल्य प्राप्त करने के लिए अनेक दुःखों को एवं निराशा सहनी पड़ती है । यहीं नहीं वह खिन्न होकर आत्महत्या करने का भी प्रयत्न करती है । अन्त में महारानी वासवदत्ता ही उस रत्नावली (सागरिका) का हाथ महाराजा उदयन के हाथ में दे देती है, भारतीय नाटकों के अनुसार सुखान्त (नाटिका) की समाप्ति हो जाती है ।

नाटिका के लक्षण के अनुरूप ही नाटिका का प्रमुख रस शृंगार रस है । यह शृंगार रस भी सम्भोग शृंगार का रूप है । यद्यपि इस नाटिका के आरंभ में वियोग शृगार का किञ्चित् स्वरूप प्राप्त होता है, परन्तु यह वियोग का रूप प्रेम का पूर्वरूप होने के कारण सम्भोग शृंगार का पोषक ही है, वियोग नहीं । संयोग शृंगार की सफलता के लिये ही कवि ने वसन्तक और सुसंगता के सहयोग का चित्रण किया है, और प्रकृति का उद्दीपन-चित्र बड़ी मर्मग्राहिता के साथ चित्रित किया है । शृंगार रस के अलावा इस नाटिका में विदूषक के सम्वादों में हास्य रस, युद्ध-वर्णन के सन्दर्भ में वीर रस और पालतू बन्दर के सहसा खुल आने से बौनों के कंचुकियों (वस्त्र विशेष) के वस्त्र में छुप जाने एवं महिषियों आदि के भयभीत होने का दृश्य चित्रित होने के कारण भयानक रस का भी स्वाद प्राप्त होता है । परन्तु दूसरे प्रतीयमान

रस तो शृंगार रस को पुष्ट करने वाले के रूप में ही अभिव्यक्त हो रहे हैं प्रमुख रूप से नहीं।

रत्नावली में वैदर्भी रीति और माधुर्य गुण का सफल निर्वाह दृष्टिगोचर होता है।

इस नाटिका में माधुर्य गुण के व्यंजक कोमल वर्णों का प्रयोग किया है माधुर्य गुण में चित्त को आनन्द विभोर करने वाला अर्थात् चित्त को आर्द्र करने वाला होता है। प्रसन्नता का उत्पादक होता है जैसा कि कहा भी है कि—

"भावमयोह्लादो माधुर्यमुच्यते।"

इस नाटिका में कैशिकी वृत्ति के प्रायः सभी रूपों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। दशरूपक कार ने कैशिकी वृत्ति का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि—

"गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृंगारचेष्टितैः"

अर्थात् कैशिक वृत्ति में सुकोमल और पेशल परिहास का वर्णन प्राप्त होने के कारण कैशिकी का अभिनय स्त्री पात्रों के द्वारा ही सफल हो सकता है। अतः कैशिकी वृत्ति का प्रयोग हास्य रस और शृंगार रस की व्यञ्जना के लिए ही किया गया है। इसमें नायक और नायिका के हाव भाव शृंगार रस के अनुसार होने के कारण मार्दवता अभिव्यंजित होती है। कैशिकी वृत्ति के प्रमुख चार भेद होते हैं वे इस प्रकार से है—(१) नर्म (२) नर्म-स्फिञ्ज (३) नर्म स्फोट और (४) नर्म-गर्म।

प्रियतम को प्रसन्न करने वाली कुशल एवं सरस खेल को नर्म कहते है। नर्म के भी तीन भेद होते हैं और उनके भी अवान्तर भेद होते हैं। नर्म-स्फिञ्ज में नायक और नायिका का मधुर मिलन होता है और नर्मस्फिञ्ज के प्रारम्भ में भय की स्थिति और परिणाम सुखान्त होता है। नर्म स्फोट में स्वल्प भावों की सृष्टि से अल्परस की अभिव्यक्ति होती है। नर्म गर्भ में नायक अपने स्वार्थ के प्रसाधन के गोपनीय व्यवहारों का पालन करता है। इसके भी दो भेद होते हैं। कैशिकी वृत्ति का प्रमुख कारण आनन्द है। इसी

लिए रत्नावली नाटिका की संयोजना की गई है। उदयन की विलासिता का प्रत्यक्ष चित्र इस नाटिका में स्पष्ट होता है, अतः नाटिका के सफलता का प्रमुख कारण कैशिकी वृत्ति का सफल वर्णन एवं निर्वाह है। इसी दृष्टि से यह रत्नावली नाटिका कैशिकी वृत्ति के चित्रण का सफल निदर्शन है।

इस रत्नावली नाटिका में विमर्श सन्धि का प्रायः अभाव सा प्राप्त होता है क्योंकि गर्भ सन्धि की अपेक्षा बीज का अधिक विस्तृत वर्णन प्राप्त होने पर, जब फल प्राप्ति में बाधा उपस्थित हो जाती है तो विमर्श सन्धि होती है। इसमें उदयन को फलस्वरूप रत्नावली (सागरिक) की प्राप्ति में निराशा नहीं हो पाती है।

रत्नावली नाटिका में नियताप्ति नामक कार्यावस्था और अर्थ प्रकरी का योग रहता है। यद्यपि इस नाटिका में विमर्श सन्धि का दर्शन चतुर्थांक में उस समय होता है, जब वासवदत्ता सागरिका को अज्ञात स्थान पर बन्द करके उज्जयिनी भेजने का प्रचार करती है जिससे राजा चिन्तातुर होता है। परन्तु उसी समय विजय की सूचना प्राप्त होने से उदयन की मनोदशा का सन्ताप कुछ कम अवश्य हो जाता है। इस विमर्श सन्धि का प्रभाव अल्पकालीन ही है। परन्तु इनका परिणाम ऐन्द्र जालिक के द्वारा अनल दाह आदि चित्र के दिखाने पर, उदयन का सुखान्त मिलन सागरिका के साथ ऐसा होता है कि भय की कोई आशंका ही नहीं रह जाती है। क्योंकि महिषी वासवदत्ता ही रत्नावली का परिणय (विवाह) कराने में सहायक होती है अतः विमर्श सन्धि का अभाव सा ही है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि—इस रत्नावली नाटिका में उन सभी लक्षणों का सफल वर्णन एवं परिपाक दृष्टि पथ में आता है। नाटिका मे जिन लक्षणों का नाट्य-शास्त्र में वर्णन किया गया है। दश-रूपक एवं साहित्य-दर्पण आदि नाटयशास्त्र मे तथा अन्य कृतियो मे उल्लिखित लक्षणो का एक साथ सफल दर्शन इसमे प्राप्त होता है। अतः नाट्य शास्त्र की दृष्टि से रत्नावली की समीक्षा करने पर ऐसा स्पष्ट होता है कि नाटिकाकार हर्षवर्धन ने नाटय शास्त्र को अपने सामने रखकर ही रत्नावली की रचना की हो। अन्यथा एक साथ नाट्य-शास्त्र के सर्वांगीण नाटिका के अङ्गों का

इतना सफल वर्णन सम्भव नहीं हो सकता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि—यह नाटिका (रत्नावली) एक सफल कृति एवं नाटिका के लक्षणों से युक्त उत्कृष्टतम नाटिका है।

प्रश्न ६—रत्नावली नाटिका के कथानक की नाटकीयता पर समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत कीजिये।

(आगरा वि० वि० १९५८, ६६, मेरठ वि० वि० १९७०)

हर्ष कृत रत्नावली नाटिका में अधिकाधिक कथानक उदयन और रत्नावली (सागरिका) की प्रणय कथा है। रत्नावली मे पताका के रूप में उस घटना को माना जा सकता है। जब सागरिका के प्रेम-गुप्त-रहस्य वासवदत्ता को मालूम चलता है कि वह मेरा वेप बनाकर उदयन से मिलने का दुःसाहस कर रही है तो स्वयं वासवदत्ता ही निश्चित किये गये स्थान पर पहुंच जाती है और उदयन उसे सागरिका समझकर प्रेम प्रदर्शित करता है। परन्तु जब वासवदत्ता उदयन द्वारा कृत इस वर्ताव को सहन नहीं कर सकी तो अपना अवगुण्ठन हटा देती है फिर क्या था? उदयन की आशा पर घड़ों पानी पड़ जाता है वह स्वय चरणों में गिर कर मनाने का यत्न करता है। परन्तु वासवदत्ता गम्भीर प्रकृति एवं स्वाभिमानी होने के कारण वहां से अप्रसन्न होकर वापिस चली जाती है। सागरिका इस रहस्य का भेद जान कर प्रेम से निराश होकर आत्मग्लानि के कारण आत्महत्या करने का प्रयास करती है परन्तु उसी समय वहां आकर उदयन उसे वासवदत्ता मा कर आत्महत्या से बचाता है परन्तु सागरिका की आवाज से उसे पता चला कि यह वासवदत्ता (महारानी) नहीं है यह तो मेरी हृदय वल्लभा मुग्धात्व गुण विशिस्ट प्रेयसी सागरिका है। यह जानकर उदयन ने अपनी प्रेयसी सागरिका के प्राणों को बचाता है। उसने कहा है कि—आज उदयन इस लता को जो अन्य रमणियों के सदृश शुभ्रवर्ण और कम्पयुक्त है। इसको वासवदत्ता के आनन के समान रक्तवर्ण का बनाऊंगा इस श्लेषमय युक्ति से भावी कथा का समाचार प्राप्त होता है कि सागरिका और भू-पाल उदयन का सुखान्त मिलन होगा और वासवदत्ता का आनन क्रोध से लाल हो जायगा। यह सूचना श्लेष-मय पदावली से अभिव्यक्त होती है अतः इस घटना के आयोजन को पताका-

स्थानक ही कहेंगे। अतः इस नाटिका में अधिकारिक और पताका दोनों प्रकार की कथा का सफल वर्णन दृष्टिगोचर होता है इस दृष्टि से वह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रत्नावली एक सफल नाटिका है।

अर्थ प्रकृति—कथानक के मुख्य लक्ष्य या फल की ओर बढ़ने वाले चमत्कार एवं सरस चित्रण युक्त कथा भाग को अर्थ प्रकृति कहते हैं। इस अर्थ प्रकृति के पांच भेद होते हैं। (१) बीज (२) बिन्दु (३) पताका (४) प्रकरी और (५) कार्य।

(१) बीज- रत्नावली नाटिका के आरम्भ में महामन्त्री यौगन्धरायण की यह उक्ति सत्य प्रतीत होती है कि भाग्य के अनुकूल होने पर अभिलषित वस्तु क्षणभर में (अनायास ही) द्वीपों के पास से अथवा समुद्र के मध्य से प्राप्त हो जाती है। यह उक्ति ही बीज प्रकृति के अन्दर आती है क्योंकि नाटिकाकार हर्षवर्धन ने इसी उक्ति को ही बीज कहते हैं। और यौगन्धरायण ने यह संकेत किया कि समुद्र में डूबने से रत्नवावली बच गई है। यह संकेत ही 'प्रयत्न' का सूचक है। अतः यह बीज अर्थ प्रकृति का प्रथम-भेद है जिसका सफल चित्रण रत्नावली में किया गया है।

(२) बिन्दु—रत्नावली नाटिका में मकरध्वज की अर्चना के पश्चात् राजा की अर्चना सम्पूर्ण होने से पूर्व सागरिका विदूषक के द्वारा राजा की प्रशस्ति में कहे गये वाक्यों से राजा की ओर आकर्षित होती है और राजा को, साक्षात् कामदेव के रूप में देखते ही उसका हृदय-प्रेम से मत्त हो जाता है। विदूषक की राजा की प्रशंसा में कही गई, वाक्यावली इस प्रकार कथा को विस्तृत करने में सहयोग प्रदान करती है, जिस प्रकार तैल बिन्दु जल पर पड़ने पर सहसा विशाल रूप में फैल जाता है। इसी प्रकार विदूषक द्वारा कथित वाक्यों से सागरिका रूपी नीर पर उदयन रूपी स्नेह बिन्दु उत्तरोत्तर विशाल होता गया है। इस प्रकार अर्थप्रकृति का द्वितीय भेद बिन्दु का भी सफल चित्रण इस नाटिका में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

(३) पताका—इस रत्नावली नाटिका में आत्महत्या के लिए उद्यत सागरिका की रक्षा करना ही पताका है अतः पताका का भी सफल चित्रण स्पष्ट परिलक्षित होता है।

(४) प्रकरी—हर्ष विरचित रत्नावली में प्रकरी का स्पष्ट वर्णन प्राप्त नहीं होता है परन्तु जिस समय सागरिका वासवदत्ता के रूप में आत्म-हत्या के लिये तैयार होती है, और राजा उसकी रक्षा करने के साथ ही साथ लता को शुभ्र वर्ण और कम्प युक्त महारानी वासवदत्ता को भी ऐसा ही बनाएगा। यह श्लेषमय संदर्भ ही प्रकरी के अन्दर स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है। अतः अर्थ प्रकृति के चतुर्थ भेद प्रकरी का भी संकेत प्राप्त होता है।

(५) कार्य—जिस प्रयोजन अथवा उद्देश्य की सिद्धि के लिए सभी उपायों का प्रारम्भ किया जाये और जिस कार्य विशेष के साफल्य के लिए अनेक साधनों को जुटाया जाता है, वह कार्य है। इस नाटिका में रत्नावली (सागरिका) और उदयन का सुखान्त मिलन ही कार्य है। यह अर्थ प्रकृति का पांचवां भेद है। इस प्रकार कुशल नाटिकाकार ने इस सफल नाटिका में पांचों अर्थप्रकृतियों का सफल वर्णन प्रस्तुत किया है।

अर्थ प्रकृति के साथ ही साथ प्रत्येक नाटक या नाटिका में कार्य की पाँच अवस्थाओं का भी साफल्य होना आवश्यक होता है, तभी नाटक अथवा नाटिका के सफल वर्णन-कला का मूल्यांकन किया जाता है। अतः यह प्रश्न उठता है कि कार्य या व्यापार की पाच अवस्थाएं कौन-कौन सी हैं और उसका स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता ह कि ये पाच अवस्थायें निम्न प्रकार हैं।

(१) प्रारम्भ (२) प्रयत्न (३) प्राप्त्याशा (४) नियताप्ति और (५) फलागम। इनका क्रमशः परिचय एवं स्वरूप इस प्रकार है।

(१) प्रारम्भ—जिस अवस्था में किसी फल-विशेष की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा का होना ही फलागम का मूल होती है अतः इसे प्रारम्भ नाम से कहा जाता है।

(२) प्रयत्न—जिस दशा में फल विशेष की प्राप्ति के लिये उद्योग किया जाए उसको (उद्योग) ही प्रयत्न कहते हैं।

(३) प्राप्त्याशा—जिस दशा मे साफल्य की सम्भावना प्रतीत होती हो और असाफल्य की आशका भी प्रतीत होती है। तो इस मिश्रित अवस्था को ही प्राप्त्याशा अथवा प्राप्तिसम्भव कहते हैं।

(४) नियताप्ति — जिस दशा में फल-प्राप्ति के साफल्य का निश्चय हो जाता है तो वहां नियताप्ति अवस्था होती है।

(५) फलागम — जिस अवस्था में लक्ष्य या फल प्राप्ति के साथ ही साथ अन्य सभी अभिलषित मनोरथों की प्राप्ति हो जाती है तो उस दशा को ही फलागम कहते हैं।

इस हर्ष रचित रत्नावली में सागरिका के नाम से रनिवास मे रहने का यत्न करना एवं उत्कण्ठित होना ही कार्य की प्रारम्भिक अवस्था है। उदयन के प्रणय (प्रेम) से अनुरञ्जित सागरिका अपने प्रिय उदयन को प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय न देखकर चित्र बनाकर मनोरञ्जन करती है। यह चित्र बनाने का यत्न ही प्रयत्नावस्था है। सागरिका सुसगता की सहायता से वासवदत्ता का कपट रूप धारण करके उदयन से मिलने का प्रयत्न करती है परन्तु सागरिका को अपने कार्य में भेद खुल जाने की आशंका बनी रहती है। यह आशंका ही प्रप्त्याशा है। वासवदत्ता के द्वारा सागरिका के मिलन का कपट व्यवहार जान लेने पर उदयन यह अनुभव करता है कि तब तक प्रेमिका सागरिका से अपना मधुर मिलन सम्भव नहीं है। जब तक वासवदत्ता प्रसन्न न हो जाय। अतः उदयन वासवदत्ता को प्रसन्न करने का यत्न करता है। यह भू-पाल का निश्चित प्रसन्न करने का यत्न ही नियाताप्ति है। नाटिका के अन्त मे राजा उदयन और सागरिका का मधुर-मिलन ही फलागम है। इस प्रकार नाटिका में कार्य की पाँच दशाओं का सरस एव हृदय-ग्राही वर्णन किया है इस दृष्टि से रत्नावली एक सफल नाटिका है।

पञ्चसन्धि—अर्थ प्रकृति और कार्यावस्थाओं के सम्मिश्रण को सन्धि कही जाती है और पञ्च अवस्थाओं के सयोग से अर्थ प्रकृति के रूप मे कथानक के पाच अश होते है। कथानक के प्रमुख उद्देश्य के साथ अन्य के अन्तगत किसी एक उद्देश्य का सम्बन्ध होने पर सन्धि होती है। यह सन्धि पांच प्रकार की होती हैं—(१) मुखसन्धि (२) प्रतिमुख सन्धि (३) गर्भसन्धि (४) विमर्श सन्धि और (५) निर्वहण सन्धि।

(१) मुखसन्धि—इस नाटिका में आरम्भ नामक अवस्था से युक्त जब अनेक अर्थों तथा रसों के व्यञ्जक बीज और अर्थ प्रकृति की उत्पत्ति होती है,

तो वहां मुख सन्धि होती है। रत्नावली नाटिका में आरम्भिक दशा का प्रदर्शन यौगन्धरायण की यह प्रबलेच्छा है इस उत्कण्ठा को पूर्ण करने के लिए बीज और अर्थ प्रकृति का व्यापार परिलक्षित होता है। नाटिका के आरम्भ से लेकर द्वितीय अंक के उस स्थान तक मुख सन्धि है, जहां सागरिका राजा उदयन का चित्र निर्माण करने में कटि बद्ध है।

(२) प्रतिमुख सन्धि—इस सन्धि के अन्दर दिखाया हुआ, बीज का कुछ लक्ष्य एवं कुछ अलक्ष्य रीति से उद्भेद हो तो वहां पर प्रतिमुख सन्धि होती है। इस रत्नावली में राजा उदयन और सागरिका के सुखमय मिलन के लिये दृश्यमान अन्योन्य प्रणय विदूषक व सुसंगता दोनों जान लेते है कि—सागरिका उदयन पर तथा उदयन सागरिका पर आसक्त है। यह लक्ष्य व्यापार ही प्रतिमुख सन्धि है। वासवदत्ता ने जब अपने प्राण वल्लभ उदयन के पास अपने चित्र को देखकर, वह उसमें अनुरक्त है। इस रहस्य को जान लेती है। यह अलक्ष्य व्यापार है। इस नाटिका में चित्र बनाते समय से वासवदत्ता के द्वारा सागरिका को चित्र देखते हुये अचानक पकड़ने तक वह प्रतिमुख सन्धि है।

गर्भ सन्धि—गर्भ सन्धि के अन्तर्गत प्रतिमुख सन्धि में परिलक्षित बीज की पुनः पुनः उत्पत्ति होती है। और वह तिरोभूत हो जाता है फिर बार बार उसकी खोज होती रहती है। इससे अर्थ प्रकृति के भेद प्राप्त्याशा और पताका के योग से ही यह सन्धि निष्पन्न होती है। सागरिका के वियोग से खिन्नमन हुआ उदयन एकान्त में कपटवेष धारिणी वासवदत्ता (सागरिका) से मिलना चाहता है। परन्तु वासवदत्ता एकान्त मिलन की बात के रहस्य को जान लेती है। जिसके कारण यह मिलन न होकर वियोग ही बना रह जाता है। इस पर सागरिका आत्म हत्या पर तुल जाती है, सागरिका की रक्षा वासवदत्ता मानकर ही खोज करता है। उदयन को शान्त करने के लिये वासवदत्ता आती है। परन्तु उदयन और सागरिका के प्रेमालाप को सुनकर वासवदत्त को पत्नी सुलभ क्रोध उत्पन्न हो जाता है, वह सागरिका को पकड़ ले जाती है। अतः यहाँ पर गर्भ सन्धि है।

(४) विमर्श सन्धि—गर्भ सन्धि की अपेक्षा बीज का अनेक प्रकार से विस्तार का वर्णन किया जाये। परन्तु फलागम में शाप, विपत्ति और क्रोध आदि के कारण विघ्न उत्पन्न हो जाये तो वहाँ विमर्श सन्धि होती है। इसमें नियताप्ति अवस्था, प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति का योग होता है। इस नाटिका के चौथे अंक में वासवदत्ता सागरिका को अज्ञात जगह में बन्द करके यह प्रचार कर देती है कि—सागरिका को उज्जयिनी भेज दिया गया है। जिससे उदयन का वियोग अतितीव्र हो जाता है और विजय वर्मा से विजय का समाचार प्राप्त करके राजा की मनोदशा में कुछ शान्ति होती है अतः यहाँ अल्पमात्रा में अवमर्श (विमर्श) सन्धि प्राप्त होती हैं। इसलिये नाटिका में यह विमर्श सन्धि का अल्पमात्र में ही चित्रण किया गया।

(५) निर्वहण सन्धि - रत्नावली नाटिका में वर्णित चारों सन्धियों द्वारा प्रमुख प्रयोजन की सिद्धि में साफल्य मिल जाता है। अतः रत्नावली में फलागम और अर्थ प्रकृति का संयोग स्पष्ट रूप से देखा जाता है। विजय वर्मा की विजय प्राप्ति के समाचार से नाटिका की समाप्ति तक निर्वहण सन्धि के दर्शन होते हैं। अन्त में वासवदत्ता स्वयं रत्नावली का हाथ राजा उदयन के हाथ में दे देती है।

उपरिलिखित विवेचन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि—रत्नावली नाटिका में उन सकल लक्षणों का वर्णन किया गया है, जिनका वर्णन एक सफल नाटिका के लिये अपेक्षित होता है। अतः हम कह सकते हैं कि रत्नावली का रचना कौशल सफल एवं सरस तथा नाट्य शास्त्र के सर्वथा अनुरूप है। अतः इसमें नाटकीय कथा वस्तु कार्यावस्था, अर्थ प्रकृति और पञ्च सन्धि आदि लक्षणों का स्पष्ट एवं सफल चित्रण दृष्टिगोचर होता है। निःसंदेह यह नाटिका एक सफल नाटिका है।

डा० भोलाशंकर व्यास ने रत्नावली नाटिका की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हुये लिखा है कि —'संस्कृत साहित्य को श्री हर्ष नें एक नई प्रम्परा दी है, वह है नाटिकाओं की परम्परा। राजशेखर की विद्धशाल भञ्जिका और कपूरमञ्जरी विल्हण द्वारा विरचित कर्ण सुन्दरी और ह्रास-काल की तीन नाटिकायें जिनमें मुख्य मथुरा नाथ की वृषभानुजा नाटिका है,

हर्ष के पद चिह्नों पर चलती दिखाई पड़ती है। केवल नाटिकाओं की परम्परा के लिये ही नहीं, नाटकीय गुणों की दृष्टि से भी श्री हर्ष की रत्नावली संस्कृत साहित्य में वेजोड़ कृतियों में से एक है।'

प्रश्न ७—रत्नावली नाटिका के आधार पर तत्कालीन सामाजिक दशा समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुतत कीजिये—

महा कवि श्री हर्ष द्वारा रचित रत्नावली नाटिका की रचना में एक अन्तः पुर का रोमाञ्चित प्रणय चित्र वर्णित किया गया है। इसीलिये नाटिका में उस समय की सामाजिक दशा का वर्णन सम्भव नहीं हो सकता था। फिर भी प्रणेता एक सामाजिक प्राणी होता है। अतः आपकी अमर कृति में तत्कालीन चित्र परोक्ष और अपरोक्ष रूप में अवश्य ही परिलक्षित होते हैं। क्योंकि कलाकार का समाज से घनिष्ट सम्बन्ध होता है और प्रणेता समाज से, समाज कवि कल्पनाओं से प्रभावित रहता है। अतः यह निश्चित है कि कवि स्वतः चाहते हुये भी प्रणय वर्णन के सन्दर्भ में भी सामाजिक स्थिति का संकेत अवश्य कर देता है।

श्री हर्ष विरचित रत्नावली के प्रथमांक में वर्णित कामदेव की अर्चना का उत्सव यह प्रमाणित करता है कि—उस समय सामूहिक रूप से उत्सव मनाने की प्रथा थी और उत्सवों में स्त्री पुरुषों को सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार था। यही नहीं इससे यह संकेत मिलता है कि उस वसन्तोत्सव या मदनोत्सव के रूप में होली का उत्सव मनाया जाता था। स्त्रियाँ और पुरुषों पर स्वच्छन्दता के साथ रंग डालती थीं, जिसके कारण फर्श सिन्दूर तथा गुलाव के कीचड़ से रक्त वर्ण का हो जाता था। जैसा कि श्री हर्ष के शब्दों में निम्न प्रकार देखा जा सकता है—

'मधुमत्तकामिनी स्वयं ग्राह-गृहीत शृङ्गकजल प्रहार-नृत्यन्नागर जल जनित कौतूहलस्य समन्ततः शब्दायमानः

अपिच—

धारायन्त्रविमुक्त सन्ततपयः पूरप्लुते सर्वतः,

सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृत क्रीडे क्षणं प्राङ्गणे।

उद्दाम प्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः,
　　सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ।

यही नही इसके अतिरिक्त प्रथमांक के १०वें और द्वादश वे श्लोकों मे होलिकोत्सव का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है जिससे साफ तत्कालीन मदनोत्सव अथवा होलिकोत्सव का समाज में प्रचलन था, इसका परिचय मिल जाता है। कामार्चना का उत्सव समाज में प्रचलित था। जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों ही स्वयन्त्रतापूर्वक उत्सव में सम्मिलित होते थे और ऐसे उत्सवों मे वेश्याओं को भी नाचने के लिये बुलाया जाता था।

इस रत्नावली नाटिका के वसन्तोत्सव के समय सुसज्जित स्त्रियों की वेषभाषा से तत्कालीन सामाजिक साज-सज्जा का परिचय प्राप्त हो जाता है। उस समय की स्त्रियों में गायन वादन और नृत्यकला के प्रति पर्याप्तअभिरुचि थी। और अनेक कलाओं का प्रदर्शन उत्सवों में समाज के सामने किया जाता था। उस समय की दासियाँ भी नृत्य वादन एवं गायन कला में निपुण हुआ करती थी और स्त्रियों को चित्र कला का भी पर्याप्त ज्ञान था। चित्रकला का परिचय सागरिका द्वारा खींचे गये चित्र से मिलता है।" कामदेववत् उदयन रतिवत् सागरिका के चित्रों से स्पष्ट हो जाता है। स्त्रियों में शृंगार प्रथा भी प्रचलित थी। केशपाश अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करके विभिन्न ढंग से संवारे जाते थे। वालों मे चमेली-पुष्प लगाने की प्रथा भी प्रचलित थी। तथा पैरों में लाक्षारस, हाथों में कंकन, कानों में कर्ण फूल, गले में रत्नमाला आदि हारो से स्त्रियाँ अलंकृत रहती थी।

स्वयं रत्नावली ने बहुमूल्य रत्नमाला धारण कर रखी थी। वह रत्नमाला धारण करती थी अतः उसके माता-पिता ने उसका नाम रत्नावली' रखा था-इस वर्णन से उस समय की स्त्रियों की साज सज्जा का शृंगारिक चित्र रत्नावली में वर्णित किया गया हैं। उस समय समाज में पर्दा प्रथा प्रचलित थी, इसका उदाहरण हमको वहाँ प्राप्त होता है जहां वासवदत्ता वेषधारी सागरिका अवगुण्ठनवती होकर उदयन के साथ रमण करने को एकान्त में जाती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि तत्कालीन समाज में पर्दा प्रथा विद्यमान थी। तत्कालीन समय में विवाहित स्त्रियो को स्वस्वामियों के चित्त में पूर्ण रूपेण आदर प्राप्त होता था क्योंकि उदयन राजा होते हुये भी वासवदत्ता के भय से भयातुर होता हुआ रत्नावली से प्रणय करता

है। प्रद्योतसुता ने सागरिका को पकड़कर अज्ञात स्थान में बन्द कर देती है। परन्तु राजा उदयन वासवदत्ता को मनाकर रत्नावली को छुड़वाने में असमर्थ रहता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय स्त्रियों का समाज में अधिक आदर था। तथा उनका अपने पतियों पर पूर्ण अधिकार रहता था। वे अपने पतियों को पूर्ण रूप से अपने अंकुश में रखती थी। अतः श्री हर्ष द्वारा उस समय की स्त्रियों की अनेक दशा एवं उनकी विविध कलाओं में प्रवीणता का स्पष्ट चित्र चित्रित किया है।

महाकवि श्री हर्ष के द्वारा इस रत्नावली में तत्कालीन सामाजिक आमोद प्रमोद का एक विशिष्ट स्वरूप वर्णित है। रत्नावली नाटिका के समीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि—तत्कालीन लोग तन्त्र-मन्त्र में श्रद्धा एवं विश्वास करते थे। भूत-प्रेत का भय समाज में व्याप्त रहता था। ऐन्द्रजालिकों द्वारा मनोरञ्जन किया जाता था जनता एवं विशेषजनों में भी सिद्धों एव महात्माओं की वाणी या कथनों पर विश्वास था। इस सिद्ध वाणी से प्रभावित होकर स्वयं मन्त्री यौगन्धरायण ने भी राजा विक्रम बाहु से सागरिका की याचना की थी। वह सिद्ध द्वारा कथित कथन इस प्रकार से था कि—जो भी व्यक्ति रत्नावली से विवाह करेगा ठीक वही चक्रवर्ती सम्राट होगा।' इस वाक्यांश पर विश्वास करके ही सागरिका को उदयन के लिये प्राप्त कराने के लिये मन्त्री यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के जलने का मिथ्या प्रवाद फैला दिया। इसके आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि—उस समय सिद्ध एवं महात्मा, समाज में पूर्ण रूपेण सम्मान के पात्र होते थे। उनकी कथित वाणी पर विश्वास भी करते थे। इसके अलावा समाज में उस समय पशु-पंक्षियों के पालन की प्रथा भी प्रचलित थी। राजा के यहाँ पालतू मर्कट के बन्धन से मुक्त होने पर, और सागरिका का राजा से सागरिका की प्रणय दशा का वर्णन करना इत्यादि उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

उपरिलिखित विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों का पूर्ण रूपेण आदर था। शृंगारिक वेष भूषा से सुसज्जित विशेष अवसरों में पुरुषों के साथ एकत्रित होती थीं। गृहिणी के रूप में स्त्रियों का

विशिष्ट सम्मान था। मनोरंजन के लिए समाज मे मदनोत्सव, होलिकोत्सव आदि उत्सवों का प्रचलन था और चित्र कला भी मनोरंजन का एक मुख्य अंग थी। इस प्रकार श्री हर्ष ने न चाहते हुए भी 'प्रेम कथा' के वर्णन के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक अवस्था का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रश्न ८—'रत्नावली' नाटिका के आधार पर राजा उदयन के समीक्षात्मक चरित्र चित्रण की झांकी प्रस्तुत कीजिये ?

महाकवि श्री हर्ष ने अपनी नाटिका में राजा उदयन को ही नायक रूप मे स्वीकार किया है। तथा उसका वर्णन एक धीर ललित नायक के रूप मे किया है। दश रूपक कार ने जो धीर ललित नायक का लक्षण प्रस्तुत किया है, वह लक्षण राजा उदयन पर पूर्ण रूपेण घटित होता है—

"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः।"

राजा उदयन कोमल स्वभाव वाला, हृदय से भावुक, प्रेमी, वीर एवं कुशल कलानुरागी है। इस रत्नावली नाटिका में राजा उदयन का चरित्र-चित्रण अत्यन्त ही संक्षिप्त रूप में चित्रित किया है क्योंकि इसमें केवल सागरिका और उदयन के पारस्परिक प्रणयी रूप को ही हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यह कथा केवल दो दिन की प्रणय कथा है। जिसमे उदयन के प्रणयी एव भावुक चित्त का ही चित्र स्पष्ट करके कवि ने सामाजिकों के चित्तों मे चित्रित कर दिया है। उस काल में राजा उदयन की कथा अत्यन्त लोक प्रिय थी कि—स्वयं कवि कुलगुरु कालिदास ने भी उदयन का वर्णन अपनी कृति 'मेघदूत' मे भी किया है और श्री हर्ष ने भी उदयन की लोक-प्रियता का संकेत करते हुए इस प्रकार लिखा है कि—

"लोके हारि च व वत्सराजचरितम्।"

प्रस्तुत नाटिका में वर्णित उदयन के प्रेमी-चित्र का अत्यन्त गाम्भीर्य चित्रण किया है। वत्सराज का हृदय-प्रेम का अगाध सागर है क्योंकि उदयन हृदय से रात-दिन अपनी प्रेमिका सागरिका के ध्यान मे मग्न रहता है। वह स्वयं सागरिका की मनो दशा के चित्र अपने अन्तः करण में बनाता और मिटाता रहता है। वह इतना ध्यानावस्थित हो जाता है कि—जब उपवन में लतिका को लहराते देखकर वह उसमे भी अपनी वल्लभा के चिन्हों का अन्वेषण

करता है। वत्सराज का प्रेम, चौर्य प्रणय नहीं था वह व्रीडा से भयातुर नहीं होता है। उदयन् रत्नावली के प्रेम के विषय में इस प्रकार से कहता है कि—

"प्रणय विशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शंकिता,
घटयति घनकण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो,
रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी॥

वासवदत्ता के वेष में जब सागरिका को विदूषक उदयन के पास ले जाता है, उस समय वत्सराज शिलातल पर बैठा हुआ, सागरिका के ध्यान में मग्न हुआ कहता है कि—सागरिका के आने में देरी हो रही है। क्या कहीं प्रद्योतसुता को उसका पता लग गया है। भयवश नायिका अनुरक्त हो जाने पर भी आशंका वश प्रेमी की दृष्टि ये नेत्रों को नहीं मिलाती है, वह प्रगाढ आलिंगन के समय रसके आवेश के कारण अपने स्तनों से आलिंगन नहीं करती और प्रयत्न पूर्वक पकड़ने पर भी पुनः पुनः कहने लगती है कि मैं जाती हू। फिर भी संकेत स्थल पर आई हुई यह नायिका प्रिय व्यक्तियों के लिए विशिष्ट आनन्द का कारण होती है।

वत्सराज के हृदय में सुकुमारता और औदार्य का स्पष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है कि वह प्रद्योत सुता वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त औदार्यपूर्ण व्यवहार करता है, स्वयं वत्सराज वासवदत्ता के हृदय को खिन्न न करता हुआ, सागरिका से प्रेम करता है। वह सागरिका से प्रेम करने पर, उससे भयभीत हो उठता है और कुपित हुई प्रद्योत सुता को मनाने का प्रयत्न भी करता है। वह सागरिका से विवाह करने से पूर्व ही सन्तुष्ट हुई वासवदत्ता से आज्ञा प्राप्त करता है। इससे उदयन एक सच्चा प्रणयी सिद्ध होता है। इसका व्यवहार सौहार्द्रपूर्ण एवं औदार्य से ओत-प्रोत है। यही प्रमुख कारण है जिसके कारण कि अन्तःपुर की दास-दासियां भी राजा उदयन के सहानूभूति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार से सन्तुष्ट दीख पड़ती हैं और उदयन को बड़ी ही आदर की भावना से देखती हैं। सागरिका के साथ मिलन में सुसंगता उदयन की सहायिका बनती है। एक साधारण चेरी के प्रति उदयन का सरल एवं उदार व्यवहार का अवलोकन करके यह सिद्ध होता है कि वह उदार

अहंकार रहित स्निग्ध-हृदयी तथा भावुक नायक है। वह सुन्दरता का उपासक एवं कल्पना में प्रवीण है। इसकी प्रामाणिकता अधोलिखित श्लोक से सिद्ध हो जाती है—

"देवि त्वन्मुखपंकजेन शशिनः शोभा तिरस्कारिणा,
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना,
लीयन्ते मुकुलान्तरेषुशनकैः सञ्जातलज्जा इव॥"

श्री हर्ष कृत रत्नावली में वत्सराज का एक प्रेमी के रूप में ही वर्णन प्राप्त होता है, जबकि वह महारानी वासवदत्ता से डरता है परन्तु फिर भी सागरिका से प्रेम करता है। आदि नाटककार भास द्वारा प्रणीत वह वासवदत्तम् का नायक वत्सराज उदयन तथा रत्नावली के उदयन की अपेक्षा अधिक गम्भीर प्रतीत होता है। भास ने उदयन के जीवन के अन्य कई चित्रों को प्रस्तुत किया है, परन्तु श्री हर्ष ने केवल 'रत्नावली' में एक प्रेमी के रूप में वर्णन किया है। वास्तविकता यह है कि अन्य नाटकों में तो वत्सराज उदयन को राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया है। परन्तु श्री हर्ष राजनीति के कीचड़ में उदयन को नहीं फंसाना चाहते, अतः आपने उदयन का केवल प्रणयी चित्र ही प्रस्तुत किया है। यहां पर श्री हर्ष ने एक योग्य शासक के रूप में चित्रित किया है यह निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता है—

"राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यासः समस्तोभरः।
सम्यक् पालन लालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्राजाः॥"

इससे उदयन का योग्य शासकत्व सिद्ध होता है यही नहीं जब वह अपनें एक योग्य मन्त्री के किये हुये कार्य पर आश्चर्यान्वित होता है और इससे ज्ञात होता है कि—यौगन्धरायण के राजा की आज्ञा लेकर ही कोई नये कार्य आरम्भ करता था। जैसा कि चतुर्थ अंक में स्वयं वत्सराज उदयन आश्चर्यान्वित होकर कहता है कि—

"कथामसौ मामनिवेद्य किञ्चित् करिष्यति।"

उपरिलिखित विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि—उदयन रत्नावली नाटिका का धीर ललित नायक है। इस उदयन में एक नाटिका के नायक

होने वाले सभी गुण एवं लक्षण परिलक्षित होते हैं। अतः वत्सराज का चरित्र पूर्ण रूप से नाटिका में सौन्दर्यो-पासक एवं उदारमना, सच्चे हृदयवाला, अनेक कलाओं में प्रवीण एवं कला-प्रणयी और प्रेमी के रूप में चित्रित किया है।

प्रश्न ९ रत्नावली नाटिका ये प्रणेता के जीवन काल का परिचय प्रस्तुत करते हुए, रत्नावली नाटिका की समीक्षा कीजिये।

(आगरा वि० वि० १९७५, मेरठ वि० वि० १९६९ ७०)

भारत-भूमि के रत्न कवियों ने नाट्य-कला का वर्द्धन किया है, उनमें से थानेसर (स्थाण्वीश्वर) के राजा श्री हर्ष प्रमुख हैं। इनका पूरा नाम हर्षवर्धन था। आप एक ऐसे नाटककार थे कि—आपके सम्बन्ध में निम्नलिखित उक्ति पूर्ण रूपेण सत्य प्रतीत होती है—

"निसर्ग भिन्नास्पदमेक संस्थमस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वतीच।"

यह हर्ष वर्धन, राज्य के पण्डित सहृदय और विद्या प्रेमी कवि तथा सम्राट थे। इन्होंने न केवल कवियों को ही अपितु काव्य को भी आश्रय दिया है। संस्कृत साहित्याकाश में इनके नाम से प्रचलित तीन रूपक प्राप्त होते हैं।

श्री हर्ष का जीवन-काल—श्री हर्ष का जीवन-काल अन्य कवियों की तरह अन्धकारपूर्ण नहीं है। इस विषय में भारत के इतिहास में विस्तृत चर्चा मिलती है। पृथक रूप से भी आपके सभाभवन के अलकारभूत महाकवि बाणभट्ट ने श्रहर्ष के जीवनवृत का चित्रण करते हुए एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्ष चरित' का प्रणयन किया है। इसके अलावा चीनी यात्री ह्वेनसाँग का भी आपके ही राज्य काल में ही भारत में आगमन हुआ था। उसने भी स्वयात्रा के विवरण में श्री हर्ष के जीवन वृत्त का भी चित्रण किया है। इसीलिए इसका प्राप्त हुआ जीवनवृत्त ऐसा नहीं है जिसमें कोई सन्देहास्पद बात हो।

ऐतिहासिक तथ्य—भारत के इतिहास में श्री हर्ष के विषय में जो विवरण प्राप्त होता है। उसी के अनुकूल हर्ष का जीवनवृत्त अधोलिखित है। भारतीयेति वृत्तम् में प० म० रामावतार शर्मा ने लिखा है कि—

प्रायोऽस्मिन् समये राजा श्री प्रभाकर वर्धनः ।
प्रतापशीलनामाभूत् स्थाण्वीश्वर पुरेश्वरः ॥
अथ प्रतापशीलस्य राज्ञोदेवी यशोमती ।
सुषुवे तनयौ राज्यवर्धनं हर्ष वर्धनम् ॥
पितर्युपरते राज्यवर्धनो मालवैः सह ।
युध्यमानः शशंकेन गौडेशेन हतश्छलात् ॥
निहते कान्य कुब्जेशे ग्रह वर्मणि मालवैः ।
बन्दी कृतास्य राज्यश्रीर्भार्या हर्षस्वसावलात् ॥
पलाय्यबन्धनाद् विन्ध्यकानने भ्रमति स्मसा ।
देवतेव बनस्याग्रे दावानलभयद्रुता ॥
स्वसारं गहनेऽन्विष्य शात्रवेभ्योऽति-वाह्य च ।
जित्वा शशांकं गौडेशं निर्वृतिमाप्तवान् ॥
बलम्यां ध्रुवसेनं स नेपालां श्लोकविक्रमः ।
नर्मदापारे निरस्तः पुलकेशिना च सः ॥
रचना वर्ण विच्छित्ति हारिणश्वनीपतिः ।
कृतीय मृगयुश्चक्रे योग वाणमयूरयोः ॥
समायां हर्ष देवस्य तीर्थयात्रार्थमागतः ।
मतिमान् ह्याशुभाख्यश्चीनश्चक्रेऽचिरं स्थितिम् ॥
रत्नावली तथा नागानन्दं च प्रियदर्शिकाम् ।
रूपकानि त्रयं चक्रे श्रीहर्षो निपुणः कविः ॥

अर्थात्—इसी समय थानेसर में प्रभाकर वर्धन नामक राजा हुआ, जिसको प्रतापशील भी कहते थे। उसकी पट्टमहिषी यशोमती के दो पुत्र थे—एक राज्य वर्द्धन और दूसरा हर्ष वर्द्धन। राज्य वर्धन अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर शशांक के साथ युद्ध में छद्म से मारा गया। श्री हर्ष के बहनोई कन्नौजेश ग्रह वर्मा मालवा से युद्ध करते समय मारे गये, जोकि राज्यश्री के पति थे। मालवा का राजा राज्यश्री को बन्दी बनाना चाहता था, वह वहां से भाग कर विन्ध्यावटी में घूमने लगी। वह अपनी बहिन को वन से ढूंढकर उसके शत्रुओं से मुक्त किया और शशांक को जीतकर हर्ष स्वस्थ हुआ। इसी

के साथ उसने वलभी के राजा और नेपाल देश को जीता, उसकी सभा में चीनी यात्री ह्वेनत्सांग आया था। श्री हर्ष ने रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका नामक तीन रूपक भी लिखे। वह एक निपुण कवि था।

हर्ष चरित का साक्ष्य—सरस्वती नदी के किनारे पर कुरुक्षेत्र के निकट थानेसर नामक एक विख्यात नगर था। वहां पुष्यभूति नाम का एक परमशिव भक्त शासक राज्य करता था। उसी के कुल में एक प्रतापी राजा प्रभाकर वर्द्धन हुये, जिनका दूसरा नाम प्रतापशील था। उनकी यशोमती नामक रानी से तीन सन्तान पैदा हुई—दो पुत्र और एक पुत्री। पुत्रों के नाम क्रमशः राज्यवर्द्धन और हर्ष वर्द्धन थे और पुत्री का नाम राज्यश्री था। इसका विवाह कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रह वर्मा के साथ हुआ था। इसी समय विदेशी जातियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। इन आक्रमणों से उत्तर प्रदेश में उथल पुथल मची हुई थी। उनका दर्प दलन करने के लिये प्रभाकर वर्द्धन ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्द्धन को भेजा। उसी के साथ हर्ष वर्द्धन भी गये थे परन्तु हिमालय तक ही पहुंच पाये थे। राज्यवर्धन आगे ही बढ़ते गये। हर्षवर्द्धन शिकार क्रीड़ा में ही रत रहा परन्तु उसी समय राजधानी से सम्राट् की अस्वस्थ दशा का समाचार मिला। हर्ष ने राज्यवर्द्धन के पास एक दूत भेजकर राजधानी आ गये। हर्षवर्द्धन के राजधानी आते ही सम्राट प्रभाकर वर्द्धन की मृत्यु हो गई। हर्ष की मां ने वैधव्य के दुःख से व्याकुल होकर अग्नि में प्रवेश कर गई थी।

सम्राट के स्वर्गवास का समाचार पाकर मालव नरेश ने कन्नौजेश पर आक्रमण कर दिया था। इस भयंकर युद्ध की विभीषिका ने अपनी जिह्वा से ग्रहवर्मा को चख लिया है और ग्रहवर्मा की पट्टमहिषी व श्रीहर्ष की बहिन को बन्दी बना लिया। इस समाचार को सुनकर राज्यवर्द्धन तिलमिला उठे और मालव नरेश पर आक्रमण के लिये चल दिये। राज्य का भार हर्ष को सौंपकर उस मालव नरेश पर आक्रमण किया वह वहां मारा गया परन्तु उसके मित्र गौड़ेश्वर शशांकदेव ने धोखे से राज्यवर्द्धन का वधकर दिया।

इतनी आपत्तियों में भी हर्ष वर्धन ने बड़ी हिम्मत से काम लिया और उसी समय कन्नौज की तरफ चल दिये। मार्ग में ही वे राज्यवर्द्धन के मित्र

भाण्डी से मिला उसने समग्र वृतान्त उसे बताया और साथ ही राज्यश्री का कारागार से भागने का समाचार भी सुनाया। वह विन्ध्याटवी में चली गई। वह भाण्डी के नेतृत्व में सेनाओं को आगे भेजकर स्वयं राज्यश्री की खोज के लिये चल दिया। वह विन्ध्याटवी में अपने मित्र दिवाकर से मिला वहीं पर उसने सुना कि एक सुन्दर स्त्री अपने प्राणों का अन्त करने को तत्पर खड़ी है। वहाँ जाकर राज्यश्री को आत्महत्या से रोका परन्तु वह अपने आप को नष्ट करना चाहती थी परन्तु वह दिवाकर मित्र के आश्रम में ब्रह्मचारिणी वत् रहने लगी। वहां से वापिस आकर अपनी सेना में जो कि भाण्डी के नेतृत्व में उस समय गंगा के किनारे तक पहुंच चुकी थी।

ह्वेनत्साँग—ह्वेनत्सांग के वर्णनों से श्री हर्ष की महानवीरता और बुद्धिमत्ता सिद्ध होती है। यह भी लिखा गया है कि—उसका राज्य विस्तार उत्तर में हिमालय, दक्षिण में नर्मदा और मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र और बंगाल के कुछ प्रदेश भी सम्मिलित थे। उस समय राजस्व का साधन केवल भू-कर ही था। अन्य कर तो केवल नाम मात्र के ही थे। अपराध कम हुआ करते थे। उसका शासन सुव्यवस्थित था। शिक्षा का भी उस समय प्रचार था। शिक्षा पर पर्याप्त धन खर्च किया जाता था। हर्ष की ओर से राज्य में विद्वानों को आश्रय दिया जाता था। महाकवि बाणभट्ट और मयूर तो आपकी सभा के रत्न थे। हर्ष भी विद्वान् था, उसने भी स्वयं तीन उपरूपक तथा एक व्याकरण ग्रन्थ लिखा था।

श्री हर्ष की राज्य सभा में बाण, मयूर के अतिरिक्त दिवाकर भी रहा होगा ऐसे भी तथ्य मिलते हैं—

अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातंगदिवाकरः।
श्री हर्ष स्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

इन सब कवियों में बाण का स्थान मूर्धन्य था, उसके विषय में तो कहा भी है—"केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।" वस्तुतः बाणभट्ट में अद्वितीय काव्य कौशल और अतुलनीय वैदुष्य था। इसी कारण किसी ने कहा भी है कि—

"बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्"

श्री हर्ष प्रणीत कृतियाँ—आपके द्वारा प्रणीत तीन कृतियां प्राप्त होती हैं जो अधोलिखित हैं—(१) प्रियदर्शिका, (२) नागानन्द और (३) रत्नावली-नाटिका।

इन कृतियों में प्रथम और अन्तवाली कृतियां तो नाटिकाएं हैं और मध्य-वर्ती कृति नाटक है। इनका क्रम क्या है? इस विषय में विद्वानों में वैभत्य है। प्रिय दर्शिका श्री हर्ष की प्रथम कृति है यही बात सन्देह रहित है। परन्तु नागानन्द और रत्नावली में से कौन सी कृति पहिले लिखी गई तथा कौन सी बाद में। यह अभी विवादास्पद है। कतिपय मनीषियों का मत है कि नागा-नन्द और रत्नावली श्रीहर्ष की अन्तिम कृतियां हैं और प्रियदर्शिका आदि कृति है। डा० भोलाशंकर व्यास रत्नावली की कविता की प्रौढ़ता देखकर उसे अन्तिमकृति ही स्वीकार करते हैं।

परन्तु यह तो वार्ता पश्चात्वर्ती है कि कौन कृति पहिले रची गई और कौन सी बाद में। परन्तु कतिपय मनीषियों का कहना है कि—ये कृतियां श्री हर्ष द्वारा प्रणीत हैं परन्तु साथ में अन्य विद्वानों का मत है कि—ये कृतियां अपर कवि द्वारा रचित हैं परन्तु उनको हर्ष वर्द्धन के नाम से प्रका-शित किया है। इन दोनों मतों में अन्तिम मत अधिक दृढ़ दृष्टिगोचर होता है क्योंकि 'काव्य प्रकाश' में इस प्रकार पंक्तियाँ मिलती है जिनसे यह सिद्ध होता है कि—ये कृतियां हर्ष द्वारा रचित नहीं है। (१) श्री हर्षोराजा धावकेन रत्नावली नाटिका स्वनाम्ना कारयित्वा बहुधनं तस्मै दत्तवान। इति काव्य प्रकाशादर्शे महेश्वरः।

(२) धात्रक नामा कविः सहि श्री हर्ष नाम्ना रत्नावलीं कृत्वा बहुधनं लब्धवान्। इत्युद्योते नागेशभट्टः।

(३) श्री हर्षस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावलीं नाटिका कृत्वा धावकाख्यः कविः बहुधनं लब्धवानिति प्रसिद्धमिति वैद्यनाथः।

(४) धावक नामाकविः स्वकृतां रत्नावलीं नाम नाटिकां विक्रीय श्री हर्ष नाम्नो नृपाद् बहुधनं प्रापेति पुराणवृत्तमिति प्रकाश तिलके जयरामः।

उपरिलिखित तथ्यों के आधार पर सिद्ध होता है कि—रत्नावली श्री हर्ष की कृति नहीं थी, वह धावक नामक कवि द्वारा रचित थी परन्तु उसको

पर्याप्त धनराशि देकर उस कृति पर अपना नाम अंकित करवा लिया। परन्तु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता है। आचार्य मम्मट्ट के उक्त वाक्यावली का आशय सम्भवतः यह हो कि—उन्होंने समय समय पर धन प्रदान करके कवियों का आदर किया हो। उसी का काव्य प्रकाश के प्रणेता आचार्य मम्मठ ने संकेत किया हो, क्योंकि श्री हर्ष की दानशीलता की कथाए सर्वत्र प्रचलित हैं। यह इतिहास प्रसिद्ध है कि वह इतना दान देता था कि उसके (दान देने के) पश्चात् वह अपनी वहिन राज्यश्री से वस्त्र मांगकर पहनता था और दरवार में जाया करता था। इसी वात का विवेचन श्री सोड्ढल ने अपनी कृति 'उदय सुन्दरी कथा' में किया है—

'श्री हर्ष इत्यवति वर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
श्री हर्ष एव निजसंसदियेन राज्ञा सम्पूजितकनककोटिशतेन बाणः॥'

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। कि इस कृति के कर्त्ता श्री हर्ष ही थे अन्य नहीं।

कवि के रूपकों की पृष्ठभूमि—जिस काल में कवि ने साहित्याकाश में पदार्पण किया था, उस समय संस्कृत का नाटकीय साहित्य अत्यन्त ही समृद्ध हो गया था। आदि नाटककार भास, कविकुल गुरु कालिदास तथा प्रकरण लेखन में निपुण शूद्रक आदि कवियों और नाटक कारों की रचनाए समक्ष आ चुकी थी। श्री हर्ष अपने पूर्ववर्ती सब प्रसिद्ध कवियों का प्रभाव स्वीकार करता हुआ अपनी कृति की रचना में प्रवृत्त हुआ। आपकी कृति द्वारा यह सिद्ध भी हो जाता है कि—आप पर भास और कालिदास का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। यथा कालिदास ने अपने रूपकों में रसयुक्त प्रेम-कथा को उपस्थित किया है उसी प्रकार श्री हर्ष ने भी अपनी नाटिकाओं मे प्रणय चित्र प्रस्तुत किया है।

श्री हर्ष ने अपनी दोनों सुप्रसिद्ध नाटिकाओं में वत्सराज उदयन को कथानक के रूप में ग्रहण किया है। यदि हम इनका भी मूल अन्वेषण करे तो वह स्रोत गुणाढ्य द्वारा रचित वृहत्कथा में ही मिलता है। इसी से यह भी ज्ञात हो जाता है कि—आदि नाटककार भास ने अपनी कृति 'स्वप्न वासवदत्तम्' का कथानक भी ग्रहण वहीं से किया होगा। श्री हर्ष ने भी अपनी

नाटिकाओं की कथा को उदयन के चरित्र से जोड़ देते हैं, क्योंकि उस समय वत्सराज की कथा तो लोक-विख्यात थी। इसी प्रकार भास ने तो नाटकों लिये इस कथानक को ग्रहण किया है, वे नाटक इस प्रकार हैं—प्रतिज्ञायौ-गन्धरायणं और स्वप्न वासवदत्तम्। इस प्रसिद्ध लोक कथा से कविकुल गुरु भी बच न सके। और 'मेघदूत' में वत्सराज की कथा का संकेत अवश्य किया है—यथा—प्राप्यावन्तीनुदयन कथाकोविदग्रामवृद्धान्।"

अपने पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों का अनुशीलन करने के अनन्तर ही अपनी विख्यात नाटिकाओं की रचना करने के कारण कवि को साफल्य विशेष रूप से प्राप्त हुआ।

कथानक की दृष्टि से प्रणेता की दोनों ही कविताएं एक सी प्रतीत होती हैं और 'नागानन्द' नाटक अमर कथानक से सम्बन्ध है।

कतिपय मनीषियों का यह मत है कि—'रत्नावली' नाटिका का प्रणेता कश्मीराधीश श्री हर्ष है। इस विषय में कल्हण ने अपनी प्रख्यात कृति 'राज तरंगिणी' के सप्तम तरंग के ६११ वें श्लोक में लिखा भी है कि—

"सोऽशेषदेशभाषाज. सर्वभाषासु सत्कविः।
कृत्स्न विद्यानिधिः प्रापख्यातिदेशान्तरेष्वपि॥"

इस मान्यता का खण्डन अधोलिखित प्रमाणों से स्वतः ही हो जाता है वे तर्क इस प्रकार से हैं—

(१) कश्मीर नरेश हर्ष देव के पितामह (बाबा) अनन्त देव थे, वे महाराज भोज देव के समकालीन थे। उन्होंने अपने 'सरस्वती कण्ठाभरण' में रत्नावली के श्लोकों को अवतरित किया है। अनन्त देव का काल १०६५ ईसवी के समीप माना जाता है।

'दश रूपक' के रचयिता श्री धनञ्जय और 'दशरूपावलोक' के प्रणेता धनिक ने भी अपने ग्रन्थ में श्री हर्षकृत रत्नावली के श्लोकों को उद्धरण के रूप में उपन्यस्त किया है। ये दोना कवि महाराज मुञ्ज के राजसभा के कवि रत्न थे। मुञ्ज का काल १०३० ईसवी माना जाता है।

इसीलिए यह भ्रान्ति ही है कि 'रत्नावली' नाटिका के प्रणेता कश्मीर नरेश श्री हर्ष थे या कोई अन्य कवि (हर्ष)।

रत्नावली—इस नाटिका का प्रधान रस शृंगार है, इसका नायक धीर ललित राजा उदयन है। यह अभिनय की दृष्टि से सफल नाटिका है। कथानक-गहन, काव्य और चरित्र, चित्रण से यह एक सफल नाटिका है। नाटकीय तत्वों का पूर्ण रूपेण पालन किया गया है। प्रणयन शैली सरस और प्रसाद गुण युक्त है। इसमें प्रेम के सजीव चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु मर्यादा का उल्लंघन कहीं भी नहीं किया गया है।

रत्नावली की कथावस्तु—प्रथमांक—में सागरिका कामदेव की पूजा के समय वत्सराज को देखकर आसक्त होती है, उसे यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसके पिता ने इसी उदयन के लिये प्रेषित किया था। यह विचारती हुई कहती है कि—

"कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता।"

द्वितीयांक—प्रस्तुत अंक के प्रवेशक में सागरिका की विरहदशा का संकेत मिलता है। चित्र विनोद हेतु वह कदली घर में बैठकर वत्सराज उदयम का चित्र बनाती है, उसकी सखी सुसंगता उस चित्र में सागरिका का भी चित्र बनाती है। तब तक भ्रमण करते हुए राजा और विदूषक भी वही उपवन में आ जाते हैं। इधर सागरिका की बातों को सुनकर एक मैना कहती है। इस प्रकार राजा उदयन को भी उसके प्रेम का ज्ञान हो जाता है तब तक मैना पिंजड़े से निकलकर उड़ने लगती है और सुसंगता द्वारा निर्मित चित्र को वहां छोड़ जाती है। वह चित्र राजा और विदूषक को प्राप्त होता है। इसी समय चित्र को खोजती हुई सुसंगता, राजा और सागरिका का साक्षात्कार करा देती है। इसी बीच महारानी वासवदत्ता भी आ जाती है। वह इस चित्र को देखकर क्रुद्ध होकर राजा के मनाने पर भी वह वहां से चली जाती है।

तृतीयांक—इस अंक में वत्सराज उदयन सागरिका से मिलने के वास्ते व्याकुल है। विदूषक सुसंगता के साथ यह योजना तैयार होती है कि सागरिका वासवदत्ता के वेष में आकर राजा के निकट अभिसरण करें। परन्तु इस योजना का ज्ञान प्रद्योत सुता को पता हो जाता है। वह समयानुकूल वहां पर पहुंच जाती है और राजा उसे सागरिका समझ लेता है और वासवदत्ता

के प्रकट होने पर वह उससे क्षमा याचना करता है। परन्तु वह अप्रसन्न होकर राजा को डाटती फटकारती है और वहां से चली जाती है। सागरिका इस बात से कातर होकर लता पाश को गले में डाल कर आत्महत्या करना चाहती है, परन्तु राजा का उस स्थल पर जाकर उसके प्राणों की रक्षा कर लेता है। वहां भी वासवदत्ता पहुंच जाती है, और सागरिका और विदूषक दोनों को पकड़ कर ले जाती है।

चौथे अंक में यह ज्ञात होता है कि—सागरिका उज्जयिनी भेज दी गई परन्तु यह समाचार मिथ्या था। वस्तुतः सागरिका तहखाने में वन्द कर दी गई थी। इसी समय जादूगर इन्द्रजाल दिखाने लगता है। तब अन्तःपुर में आग लग जाती है जब वासवदत्ता को सागरिका की रक्षा की याद आती है। तो वह राजा से प्रार्थना करती है कि—"एषा खलु मया निघृणयेह निगडेन संयमिता सागरिका विपद्यते। तत्र परि त्राय तामार्य पुत्रः।" जब सागरिका को अग्नि से निकाल कर लाता है तब तक दो नवीन व्यक्ति वाभ्रव्य और वसुभूति मंच पर आ जाते हैं। वे 'रत्नावली' को पहचान लेते हैं। प्रद्योत-सुता वासवदत्ता उसको राजा के हाथों में दे देती है। इस प्रकार रत्नावली (सागरिका) और राजा उदयन के सुखद मिलने के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है।

रत्नावली का कथानक समाप्त है, घटनायें मनोरञ्जक हैं। यद्यपि श्री हर्ष पर कविकुल गुरु कालिदास का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है तथापि उनकी कल्पना शक्ति विलक्षण है। आपने अपनी नाटिकाओं में रनिवास के प्रणय की सुखमय झांकी दिखाई हैं। उन्होंने दोनों ही नाटिकाओं में एक कथानक का गुम्फन किया है जिसे Dr. Keith (डा० कीथ) ने अपने Sanskrit Drama में दोष माना है।

चरित्र-चित्रण—यह नाटिका चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से भी सफल है। इसका नायक धीर ललित होने कारण निश्चिन्त, मृदु और कर्त्तव्यपरायण है। उसके चरित्र के विषय में यह उक्ति युक्तिसंगत कही गई है कि—"लोके हारि च वत्स राज चरितम्।" वह कुशल राजनीतिज्ञ, वीर और उच्च विचारक राजा है। विलासी होने पर भी कायर नहीं है। उसका साहस एवं शौर्य

सागरिका की रक्षा-प्रसंग में दृष्टिगोचर होता है। वह वासवदत्ता के प्रति आदर की भावना रखता है। वह एक प्रणयी नायक है।

रत्नावली—इस 'रत्नावली' नाटिका की नायिका रत्नावली है। इसमें वह सागरिका के नाम से चित्रित की गई है। वह मुग्धा नायिका और सुन्दरी, है। उसके हृदय में प्रेम का सागर हिलोरे लेता रहता है। वह भाव प्रवण है। उसे कुलीनता पर अभिमान है।

वासवदत्ता—यह वत्सराज उदयन की प्रधान महिषी है। वह कोमल स्वभाव वाली और प्रणय-प्रवण है। राजा उदयन उसका अत्यन्त सम्मान करता है। वह राजा की विलासी प्रकृति से परिचित है और उसमें भी स्त्री सुलभ सपत्नी डाह विद्यमान है। वह नहीं चाहती कि उसका पति अन्य रमणी से प्रेम करे। वह सरल स्वभाव और दयालु हृदया है। यद्यपि सागरिका की धृष्टता से अप्रसन्न होकर वह उसे बन्दीघर में बन्द करा देती है परन्तु सहसा अग्नि के समाचार से घबराकर दयार्द्र वासवदत्ता उसे बचाने की राजा से प्रार्थना करती है। यद्यपि राजा को परकीया स्त्री से प्रणय करने देना नहीं चाहती परन्तु जब वह यह सोचती है कि—राजा सागरिका के बिना दुःखी होंगे तब सागरिका को राजा के लिए प्रदान कर देती है और अन्त में यह कहने को विवश हो जाती है—"एतावदपि तावन्मे भगिन्याऽनु रूपं भवतु।'

विदूषक—विदूषक नामक पात्र की योजना नाटक में हास्य हेतु की जाती है। यह कैशिकी वृत्ति का नर्म साचिव्य भी करता है। इसमें यह दोनों ही रूपों में सफल वर्णन किया गया है। यद्यपि साधारणतया उसके व्यवहार से उसकी जड़ता ही दृष्टिगत होती है। परन्तु वह कहीं-कहीं पर सूझ-बूझ की बात कह देता है। जब राजा अपनी पट्टमहिषी की प्रतीक्षा करता है तो उस समय वह नूपुर-ध्वनि करके महिषी-आगमन की सूचना देता है कि महारानी आ रही हैं। अवनि-पाल के प्रति इसकी भावना उच्च होती है। सक्षेप में कवि ने विदूषक का वर्णन साफल्य पूर्वक किया है।

महा मन्त्री यौगन्धरायण का चरित्र ही इस नाटिका रत्नावली का सूत्रधार है। उसके द्वारा ही कथा वस्तु का सृजन किया गया है। यद्यपि वह यौगन्धरायण राजा की आज्ञा के बिना ही समस्त कार्य करता है परन्तु अन्त

में आकर राजा से क्षमा-याचना कर लेता है। कहता है—'स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तु:।"

यह चाणक्य की भांति अद्वितीय बुद्धिमान् है। वह कोसल राज्य में चतुरंगिणी सेना भेजकर उस पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा वहां शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना के वास्ते अपने पक्षीय आदमी भी नियुक्त कर देता है। ऐन्द्र जालिक का खेल भी उसी की बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

स्वभावत: इसके पात्र प्रतिनिधि पात्र है, व्यक्तित्व सम्पन्न नहीं हैं। यथा—उदयन विलासिता वृति का प्रतिनिधि है। प्रद्योतसुता ईर्ष्यालु है वह सपत्नी 'रत्नावली' मुग्धा प्रेयसी, और महा मन्त्री योगन्धरायण चतुर मन्त्री का प्रतिनिधित्व करता है।

यद्यपि आदि (प्रथम) नाटककार भास और श्री हर्ष दोनो ही कवियों ने वत्सराज उययन के ही चरित्र का चित्रण किया है परन्तु दोनों में काफी अन्तराल है। वस्तुत: भास का उदयन श्री हर्ष के उदयन की अपेक्षा अत्यन्त भास्वर है। दोनों ही वासवदत्ता, भी भिन्न भिन्न है। जहां भास की वासवदत्ता में उसका चरित्र गाम्भीर्य और सहिष्णुत्व गुणों से युक्त है वहां श्री हर्ष की वासवदत्ता का चरित्र अत्यन्त ही चाञ्चल्य और असहिष्णुत्व से युक्त है।

परन्तु यह सब कहने पर भी श्री हर्ष की रचना महत्वपूर्ण है। यह कथन हर्ष ने स्वयं रत्नावली के विषय में कहा है।

रस की दृष्टि से रत्नावली का निरूपण—रत्नावली नाटिका के रचयिता श्री हर्ष ने इसमें वियोगेतर शृंगार (संयोग शृंगार) का उप स्थापन किया है। संयोग शृंगार का लक्षण अधोवर्णित है—

"दर्शनस्पर्शनादीनिनिषेवेते विलासिनौ।
युक्तानुरक्तावन्योयं संभोगोऽयमुदाहृतः॥"

जब कि नाटिका में सबसे पहिले राग की योजना की गई है। जिसका वर्णन वियोग शृंगार के अन्तर्गत आता है, किन्तु वह रस संयोग शृंगार को पुष्ट करने वाला ही है स्वतन्त्र सत्ताधारी नहीं है।

नायक—इस नाटिका का नायक उदयन धीर ललित है। जिसका लक्षण अधोलिखित है—'निश्चिन्तो मृदुरसिकं कलापरोधीरललितः स्याद्।' ठीक

इसी प्रकार का लक्षण 'दशरूपक' ये रचयिता घनञ्जय ने किया है वह इस प्रकार है—

"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।"

नायिका—नायिका के दशरूपककार ने १३ भेद किये हैं। दश रूपककार ने मुग्धा नाटिका को प्रथम प्रकार की नायिका मानी है। अपर विद्वानों ने मुग्धा नायिका का लक्षण इस प्रकार किया है—

दृष्टा दर्शयति व्रीडां सम्मुखं नैव पश्यति ।
प्रच्छन्नं वाभ्रमन्तं व तिर्यकृतं पश्यति प्रियम् ।।
बहुधा पृच्छयमानापि मन्द मन्दमधो मुखी ।
सगद्गद्स्वरं किञ्चिद् प्रियं प्रायेण भाषते ।।
अन्यैः प्रवर्तितां शश्वत्सावधाना च तां कथाम् ।
श्रृणोत्यन्यं दत्ताक्षी प्रिये वालानुरागिणी ।।"

श्रृंगार के अलावा हास्य, वीर और भयानक आदि रस भी अंग रूप में अभिव्यक्त किये गये हैं।

रीति—काव्य में तीन रीतियां प्रसिद्ध हैं। परन्तु रत्नावली नाटिका में वैदर्भी रीतिका प्रचुर प्रयोग हुआ है जो लक्षण दिया जायेगा, वह इस नाटिका पर खरा उतरता है। वैदर्भी रीति का लक्षण इस प्रकार है—

"माधुर्य व्यञ्जकैवर्णै रचना ललितात्मिका ।
अल्प वृत्तिर वृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।।"

नाटकीय शास्त्र का विधान और रत्नावली—श्री हर्ष द्वारा प्रणीत इस नाटिका की रचना उन रचनाओं में है जिनका प्रणयन पूर्ण शास्त्रीय नियमों का अनुकरण करके किया गया है। अन्तः नाट्य ग्रन्थ दश रूपक तथा आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रणीत 'साहित्य दर्पण' आदि ग्रन्थों के आधार पर रत्तावली के रूप को ग्रहण किया है। परन्तु इस प्रकार शास्त्रीय माने जाने पर भी इसे सम्पूर्ण लक्षण ग्रन्थों को आधार वना कर इस नाटिका का प्रणयन किया है। वस इतना अवश्य कह सकते हैं कि—अपरनाटकों के प्रणेताओं की अपेक्षा इस नाटिका में कवि ने नाट्य शास्त्र के नियमों का विशेष रूप से प्रयोग किया है। अतः समग्र नाटकीय नियमों के आधार पर रचित इस कृति के घटनाचक्र

की गतिशीलता और पात्रों के व्यापारों में स्वाभाविकता परिलक्षित होती है, जिसके कारण कि यह रत्नावली नाटिका एक उच्च कोटि की एक सफल नाटिका है। क्योंकि इसमें सकल नाट्य शास्त्र के नियम स्वाभाविकता एवम् सरसता के साथ चित्रित किये गये हैं।

प्रश्न १०—श्री हर्ष प्रणीत रत्नावली नाटिका की विवेचना कीजिये ?

भू-पाल श्री हर्ष के तीन ही रूपक विख्यात है। जिनका क्रम इस प्रकार है:—

(१) प्रिय दर्शिका (२) रत्नावली और (३) नागानन्द।

इन तीनों कृतियों से प्रथम दो नाटिका हैं तथा अन्तिम कृति नाटक है। प्रथम दोनों नाटिकाओं में वत्सराज उदयन की ही प्रणय कथा का वर्णन किया गया है। वत्सराज्य की प्रणय-कथा कालिदास पूर्व लब्ध प्रतिष्ठ कथा रही थी बाद में इनती नहीं जितनी पहले थे। अवनि-पति उदयन की कथा का क्रम इस प्रकार से है—सर्व प्रथम यह कथा वृहत्कथा में वर्णित थी, उसके बाद में इसी कथा का चित्रण वृहत्मञ्जरी में हुआ और बाद में कथा सरित्सागर में आते-आते यह कथा पुष्पित और पल्लवित हुई है। परन्तु नाट्य शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित श्री हर्ष ने भी इसी उदयन की प्रणय कथा को ही कथानक के रूप में ग्रहण करके रत्नावली नाटिका की रचना की है और यथास्थान अद्वितीय प्रतिभा के अनुरूप उचित परिवर्तन करके अपने रूपक को एक नाटिका का रूप दिया है।

रही बात प्रणय व्यापारों की-ये प्रियदर्शिका और रत्नावली का एक से ही हैं और दोनों ही नाटिकाओं का रहस्य के खुल जाने पर, दोनों ही नायिकायें अपनी आत्म-हत्या करने को तैयार हो जाती हैं। आत्म-हत्या करने के मार्ग पर आगे बढ़ी हुई उनके प्राण-त्राण हेतु नायको ने ही रक्षा की है। अपने प्रियतम से मिलने को प्रवृत्त हुई नायिकायें और विदूषक पट्टमहिषी द्वारा वन्दी बना ली जाती हैं, परन्तु जब नाटिका का अन्त होता है तब स्वयं महारानियां ही उस प्रणय को मूर्त रूप प्रदान कर देती हैं इसी परिपाटी का इन दोनों नाटिकाओं में निर्वाह हुआ है। उपरिलिखित समानतायें इन

दोनों नाटिकाओं में समान रूप से प्रयुक्त की गई हैं। तथापि गम्भीरता से विमर्श करने पर यह ज्ञान होता है कि प्रियदर्शिका की तुलना में रत्नावली की रचना अधिक सशक्त एवं सफल प्रतीत होती है। प्रिदर्शिका की रचना शैली शिथिल है किन्तु उसमें गर्भांक की योजना अत्यन्त उत्कट कल्पना का योग प्राप्त होता है। रत्नावली का कथानक अत्यन्त ही रोचक एव अधिक सशक्त सा प्रतीत होता है। रत्नावली मे घटना चक्र की गति शीलता दृष्टव्य है। इसमें सामाजिकों की उत्सुकता की सदा वृद्धि होती रहती है। जिनमे किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई है। श्री हर्ष ने जो ऐन्द्रजालिक का प्रसंग प्रस्तुत किया है उससे घटना चक्र में अद्भुतता एवं सर्वथा मौलिकता का समावेश उपस्थित होता है। कुछ साहित्य समालोचकों का यह मत है कि—"श्री हर्ष ने अपनी प्रिय दर्शिकानाटिका में जो त्रुटियां की थी, उनका संशोधन एवं परिमार्जन करने के लिये ही 'रत्नावली' नाटिका की रचना की है।" जबकि दोनों नाटिकाओं में पर्याप्त स्पष्ट समानता दृष्टिगत होती है तथापि यह वैशिष्ट्य है कि दोनों नाटिकाओं में रसास्वाद की अपूर्व अनुभूति होती है।

रत्नावली नाट्य कला की दृष्टि से एक सफल रचना है, इसके सम्यक् निरीक्षण से ऐसा प्रतीत होता है कि श्री हर्ष ने जितने भी गुण होने चाहिये। इन सकल गुणों का संकलन इस नाटिका में वर्णन किया है। नाटिका के सकल लक्षणों को सामने रखकर ही इसकी रचना की हो इसका यह कारण है कि—दश रूपक के अनन्तर साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ में रत्नावली के सैकड़ों श्लोकों को नाटकीय सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए उद्धृत किया है। यही नही विश्वनाथ ने रत्नावली को आधार पर नाटिका के विभिन्न तत्वों और विभागो का विवेचन किया है। ने केवल विश्वनाथ ने अपितु अन्य नाटककारों ने अवस्थाओं अर्थ प्रकृति, पञ्चसन्धि तथा ६३ सन्ध्यंग आदि स्थानों का सम्यग् विवेचन करने के लिए रत्नावली से पर्याप्त उद्धरणों तो उद्धृत किया है—

पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय ने रत्नावली की उत्कृष्टता एवं ख्याति के विषय में कहा है कि—

"रत्नावली की प्रसिद्धि अपने गुणों के कारण प्राचीन काल से ही अक्षुण चली आ रही है। शास्त्रीय पद्धति पर निर्मित एक शोभन रूपक के रूप में इसकी प्रसिद्धि का ज्ञान हमें 'दशरूपक' के विशेष विश्लेषण से होता है। धनञ्जय ने इसकी कथावस्तु का विस्तार युक्त एवं विशुद्ध विश्लेषण दशरूपक में किया है। कविराज विश्वनाथ, ने भी सन्धियों तथा सन्ध्यंगों के दृष्टान्त देने के लिये इसे ही विशेषतया चुना है। यह न समझना चाहिये कि नाटकीय विधि विधानों को प्रदर्शित करने के लिये श्री हर्ष ने रत्नावली की रचना की है। यदि ऐसा होता तो यह नाटिका साधारण कोटि की ठहरती। किन्तु तथ्य यह नहीं है। हर्ष ने इस कथा वस्तु को ग्रहण करके एक भव्य स्वरूप प्रदान कर दिया है। जिसका विश्लपण करने से नाट्यशास्त्र के अनुसार वस्तु की पञ्चसन्धियां यहाँ स्पष्ट रूप से उपस्थित है।

"हर्ष संस्कृत नाटककारों में रोमांचक प्रणय नाटिका के प्रणेता के रूप सर्वदा सम्मानित रहेंगे। इनके ऊपर भास और कालिदास का प्रकृष्ट प्रभाव तथा प्रेरणा अवश्य विद्यमान है। भास ने भी उदयन से सम्बद्ध दो नाटकों की रचना की है—वासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण, और इन दोनों नाटकों के प्रभाव की एकता तथा कथा वस्तु की अभिन्नता के कारण हर्ष की इन दोनों नाटिकाओं के ऊपर प्रभाव पड़ा है इसी प्रकार कालिदास के नाटकों में भी घटनाओं वर्णनों तथा वार्तालापों का विशिष्ट साम्य दृष्टिगत होता है। विशेषतः मालविकाग्नि मित्र का। परन्तु हर्ष की मौलिकता तथा नवीन कल्पना में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है।

श्री हर्ष की रचनाओ में प्रसाद तथा माधुर्य गुण की अद्वितीयता दृष्टव्य है। हर्ष के चित्रण सरस एवं सहृदय हृदयावर्जक हैं। उन्होंने प्रकृति के विभिन्न विचित्र दृश्यों का वर्णन बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। रत्नावली नाटिका के प्रारम्भ में मकरध्वज की पूजा के उत्सव का वर्णन बड़े उत्साह के साथ किया गया है जो देखते ही बनता है। वसन्तोत्सव के अवसर पर रंग-क्रीडा का एक चित्र अधोलिखित श्लोक में वर्णित है—

'धारायन्त्र विमुक्त सन्ततपयः पूरप्लुते सर्वतः,
सद्यः सान्द्र विमर्दकर्दमकृतक्रीडेक्षणं प्राङ्गणे।

उद्दाम-प्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणै,
सिन्दूरी क्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ॥'

श्री हर्ष ने अपनी कृतियों में संगीत का अंश देकर मधुरता उत्पन्न कर दिया है। शृंगार रस प्रधान रत्नावली में संगीत की योजना करके नाट्य-कला का अनुसरण करते हुये हर्ष ने प्रणय का सफल कोमल एवं कान्त-चित्र वर्णित किया है। रत्नावली नाटिका में रनिवास के विलास और आमोद प्रमोद का अत्यन्त मनोरञ्जक एवं रोमाञ्चक वर्णन, बड़ी वास्तविकता के साथ वैदर्भी रीति के द्वारा प्रस्तुत किया है। सागरिका का अद्वितीय रूप वर्णन करते हुये वत्सराज के द्वारा हर्ष ने कहा है कि—यह सागरिका कितनी सुन्दर है, जिसका प्रेमी वत्सराज है। उदयन की प्रणय पूर्णदृष्टि अपनी प्रेमिका सागरिका के वायुरूपी गिरि एवं उन्नतावनत प्रान्तों में भ्रमण करती हुई, नयनों पर जाने पर रुक जाती है, क्योंकि वत्सराज की दृष्टि उसकी रूप माधुरी-की प्यासी है और उसके नयनों में जल की चमक दिखाई पड़ती है : जो पिपासु होता है पिपासा शान्ति करने के लिये सलिलान्वेषण करता है अतः उदयन की आंखें सागरिका को देखते ही शान्ति सलिल के उपलब्धि की आशा से रुक जाती है तृषित उदयन के नयनों को कितना अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ता है कि—अनेक विशाल कठिनाई से जघन स्थल का मार्ग तय करके निलम्ब स्थल पर चक्कर लगाकर उदर में स्थित त्रिवली रूपी तरंगों में गत्यवरोध के कष्ट को पार करके बड़े काठिन्य से शनैः शनैः उन्नत स्तनों पर सवार होकर, अब वह उत्कट आंखें सागरिका की आंखो का दर्शन लाभ कर रही है। इसी भाव की अभिव्यक्ति करने के लिए श्री हर्ष ने इस प्रकार भावों का ग्रन्थन प्रस्तुत किया है—

'कृच्छ्राद्रूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले,
मध्येऽस्यास्त्रिवली तरंग विषमे निः स्पन्दतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरुलंघ्य तुङ्गौ स्तनौ,
साकाङ्क्षमुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ॥'

श्री हर्ष ने प्रकृति के कोमल के कोमल पक्ष का ही चित्रण बड़ा ही

ल एवं सरस चित्रों को प्रस्तुत करने में सफल चित्रकार एवं सिद्धहस्त कवि वत्सराज उदयन ने प्रद्योत सुता के अद्वितीय रूप माधुरी का वर्णन करने के से सायंकालीन प्रकृति का अत्यन्त ही रमणीय चित्र प्रस्तुत करते हुये कहा है।

'देवि ? त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा ।

पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ॥'

इस श्लोक में वासवदत्ता का मुखमण्डल तो उपमेय रूप रहित हैं तथा कालीन प्रकृति की छवि को उपमान मानकर वर्णित किया है।

सायं हो जाने के कारणतम क्रमशः शनैः शनैः सकल संसार को आवृत्त लेता है और लोगों की दृष्टि की गति को भी रोक देता है। जैसा कि हर्ष के शब्दों में वर्णन इस प्रकार किया है—

पुरः पूर्वामेवस्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं
क्रमात्क्रामन्नद्रिमपुरविभास्तिरयतियति ।' इत्यादि ।

वत्सराज भावुक एवं प्रणयी हृदय वाला नायक है। उदयन अपनी मा सागरिका के अद्वितीय लावण्य का मर्मग्राही एवं हृदय स्पर्शी चित्रण हुये कहते हैं कि—हे सागरिके ! तुम्हारे मुखमन्द्र की उपस्थिति में ह शशि उदय हो रहा है, यह तो उसकी मन्दता (जड़ता) नहीं तो क्या है ? जब तुम्हारा मुखचन्द्र इस धरातल पर स्थित है। तो इस की क्या आवश्यकता है ? तुम्हारा मुखमण्डल रक्तारविन्द छवि को कृत करने वाला है, ठीक यह कार्य चन्द्रमा भी करता है। यदि चन्द्र य है तो सागरिका के अधरोष्ठ में अमृत निवास करता है। अतः बातें जब सागरिका के मुख से ही प्राप्त हो जाती है तो चन्द्रमा की आवश्यकता है। जो इस प्रकार श्लोक में निबद्ध है—

'किं पद्मस्यरुचं न हन्ति नयनानंद विधत्ते न किं,
वृद्धि वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् ।
वक्त्रेन्दौ तवसत्ययं यदपरः शीतांशुरुज्जृम्भते,
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तवाप्यस्त्येव विम्बाधरे ॥'

रत्नावली नाटिका के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुये डॉ० कीथ कहते हैं कि—

'सन्ध्या, मध्याह्न, फुलवारी, तपोवन, उद्यान निर्झर विवाहोत्सव, स्नानकाल. मलयगिरि, वन प्रासाद आदि काव्य के सामान्य प्रिय विषय है। प्रतिभा और लालित्य में वे कालिदास से निश्चय ही घटकर हैं। परन्तु व्यञ्जना और विचारों की सरलता महान् गुण इनमें विद्यमान है। उनकी भाषा संस्कृत परिनिष्ठित और अर्थगर्भित है। शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का प्रयोग संयत तथा सुरुचि पूर्ण है उनके युद्ध वर्णन ओज का चमत्कार भी हैं—

'अस्त व्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणैः कृत्तोत्तमांगेमुहुर,
व्यूढासृक् सरिति स्वनत् प्रहरणैर्वर्मोद्गमद्वह्निनि।
आहूयाजिमुखे स कौसल पतिर्भग्ने प्रधाने बले,
एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थोहतः॥

शस्त्रों के प्रहार से शिर की रक्षा के अस्त-व्यस्त हो जाने पर शिर काट लिये गये, रक्तधारा स्रवित होने लगी झनझनाते हुये शस्त्र प्रहारों से वह्नि निकलने लगी, जब उनकी चतुरंगिणी सेना तितर-बितर होने लगी तब युद्ध में आगे प्रवेश करके रुमण्वान ने कोशलेश को ललकारा, तथा हाथी पर सवार होकर सैकड़ों बाणों के द्वारा उसको यमपुर निवासी बना दिया इस श्लोक में भावों से अधिक प्रशंसनीय शब्द विन्यास है जिस रनिवास में आग लगजाने के कारण भगदड़ मच जाती है तो उस समय का बहुत ही प्राकृतिक एवं हृदयाकर्षक करने वाला चित्र प्रस्तुत करते हुये श्री हर्ष ने लिखा भी है कि—

"हर्म्याणां हेमशृंगश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः,
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपन विशुनतात्यन्ततीव्राभितापः।
कुर्वन् क्रीडामहीध्रं सजल जलधरश्यामलं धूमपातै,
रेष प्लोषार्त्तयोषिज्जनइह सहसैवोत्थितोऽग्निः॥

रनिवास में अग्नि व्याप्त हो जाने से वनिताजन चिल्ला रही है, अनल की शिखायें राजप्रासाद के शिखरों का स्पर्श कर रहा है और उपवन के वृक्ष

भी अग्निदाह से झुलसे जा रहे हैं। इस बात का वर्णन स्वयं वत्सराज ने एक अपरोदाहरण के रूप में किया है जो विरही कथन के सर्वथा अनुरूप ही प्रतीत होता है।

"विरम विरम वह्ने मुञ्च धूमानुबन्धं,
प्रकटयति किमुच्चैरर्चिषां चक्रवालम्।
विरहहुत भुजाऽहंयोन दग्धः प्रियायाः,
प्रलयदहनभासा तस्य त्वं किं करोषि॥"

महाकवि श्री हर्ष ने संस्कृत साहित्याकाश में रत्नावली नामक कृति की रचना करके पुलकित करने वाला प्रेम वर्णन करते हुए जिस परम्परा को खोज निकाला है। परन्तु आगे चलकर राजशेखर और विल्हण आदि परवर्ती नाटक एवं नाटककारों ने भी उसका अनुकरण किया है। इससे श्री हर्ष का नाट्य कला के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है। इस नाटिका का उद्देश्य शृंगार की अभिव्यक्ति नहीं है अपितु स्वकृति के द्वारा संस्कृत रूपकों को अभिनेय सिद्धि हेतु संस्कृत रंगमञ्च को गतिशीलता प्रदान करना है। यदि हमें रचनाओं में प्रौढता के दर्शन करने हों तो हमें भवभूति की कृतियों में प्रौढता परिलक्षित होती है और विशाखदत्त की कृतियों में विविधशास्त्रों की विद्वत्ता परिलक्षित होती है परन्तु इस प्रणय प्रयुक्त रत्नावली नाटिका की नूतन परम्परा की खोज करके और संस्कृत नाटकीय कला में अवरुद्ध रंगमंच की नाटकीयता में गतिशीलता उत्पन्न करके नाट्यकला को पुनः प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया है। अतः बिना किसी सन्देह के हम कह सकते हैं कि श्री हर्ष का संस्कृत नाटकों के प्रांगण में विशेष स्थान है। श्री हर्ष को हम कवि कुलगुरु कालिदास व रसानुभूति भवभूति की कोटि में उनका स्थान निर्धारित नहीं कर सकते परन्तु एक रनिवास के रोमाञ्चकारी शृंगारिक चित्र को नाटिका के रूप में निबद्ध करने के कारण उनको संस्कृत साहित्य में अपूर्व स्थान पर आसीन करके समीक्षक भी महान् गौरव का अनुभव करते हैं। इसीलिए नाट्य-कला में श्री हर्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस रत्नावली नाटिका में नाट्य कलोचित सर्व गुण विद्यमान हैं अतः यह एक सफल कृति है।



प्रश्न-११ श्री हर्ष कृत रत्नावली नायिका के चरित्र पर समीक्षात्म विवेचन प्रस्तुत कीजिए ।

अथवा

सागरिका के चरित्र चित्रण के विषय में आप क्या जानते हो ? स्प कीजिये ।

श्री हर्ष कृत रत्नावली नाटिका की नायिका रत्नावली (सागरिका सिंहलेश्वर विक्रम बाहु की प्रिय दुहिता है । इस नाटिका का नामकर नायिका के नाम पर रखा है । इस नाटिका में प्रथमांक से चतुर्थांक तक सर्व ही सागरिका के नाम से अभिहित किया गया है । सिंहलेश्वर ने अपन दुहिता रत्नावली को उदयन के लिए भेजता है परन्तु दुर्भाग्य से वह जलपो टूट जाता है परन्तु वह किसी तख्ते (पट्टे) पर बैठकर बाहर निकल आत है । व्यापारी लोग उसे यौगन्धरायण के पास पहुचा देते हैं । सब गोपनीयत को जानते हुए भी यौगन्धरायण उसका नाम सागरिका रखकर वासवदत्त की दासी बनाकर अन्तः पुर में रखवा देता है । वह सागर से प्राप्त हुई थ अतः रत्नावली का नाम सागरिका रखा । प्रस्तुत नाटिका में कामार्चना के समय ही रत्नावली के दर्शन होते हैं । जबकि पट्टमहिषी वासवदत्ता य नहीं चाहती थी कि सागरिका भी कामोत्सव में जाये, क्योंकि वह असाधारण सुन्दरी थी परन्तु वह कामोत्सव में जाती है । वासवदत्ता ने सागरिका को देखते ही अवसन्न रह गई और अचानक कहने लगती है ।

"अहो ! प्रमादः परिजनस्य यस्यैव दर्शन पथात् प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत् । भवतु । एवं तावद् भणिस्यामि (प्रकाम्) हञ्जे सागरिके ! कस्मात्वमद्य मदन महोत्सव पराधीने परिजने सारिकामुज्झित्वे-हागता । तत्रैव लघुगच्छ । एतदपि सर्वं पूजोपकरणं काञ्चनमालायाः हस्ते समर्पय ।" अर्थात्—

"अरे ! दासियों का यह प्रमाद है कि जिस उदयन के दृष्टिपथ से सागरिका को प्रयत्नपूर्वक रक्षा कर रही हू । उसी उदयन के दृष्टिपथ में आ गई है अच्छा होगा, तो मैं ऐसा ही कहूंगी (प्रकाश में) अरि सागरिके ! आज तुम कामोत्सव में कामार्चना में रत सेवक वर्ग के होने पर अब किस

प्रकार सारिका को छोड़कर यहां आ गई हो। वहीं शीघ्र जाओ। इस समग्र अर्चना सामग्री को काञ्चन माला के हाथ में दे दो।

सागरिका अद्वितीय लावण्ययुक्त और साम्राज्ञी होने पर भी सामुद्रिक चिन्हों से युक्त है। वासवदत्ता अवनि पति उदयन की पट्टमहिषी है उसका सौन्दर्य भी असाधारण है अतः वह सागरिका के सौन्दर्य से ईर्ष्या करती है इसीलिए वह उसको उदयन के सामने आने देना नहीं चाहती। वासवदत्ता के द्वारा इतने कठोर प्रतिबन्ध होने पर भी वह उसकी दृष्टि में आ ही जाती है। सागरिका के अद्वितीय सौन्दर्य तथा अक्षत सौन्दर्य सम्पन्ना सागरिका को देखकर कह देता है—

"लीलावधूतपद्मा कथयन्ति पक्षपातमधिकं नः।
मानसमुपैतति केयं चित्रगता राजहंसीव॥

अपिच—

विधायापूर्वं पूर्णेन्दुमस्या मुखम भूद्ध्रुवम्।
धाता निजासनाम्भोज विनिमीलनदुःस्थितः॥"

इसका यह अभिप्राय यह है कि विलासिता से कमल को हिलाते हुए हमारे प्रति (अत्यधिक) प्रेम को प्रकटित करती हुई, चित्रांकिता यह कौन स्त्री है जो हमारे चित्त में प्रवेश कर रही है। तथा तीव्र गति से हिलते हुए कमल समूह को कम्पित करने वाली राजहंसी मान सरोवर में प्रवेश कर रही हो। और यह भी है कि जब विधि ने इस चन्द्रमुखी का निर्माण किया होगा तो उस समय स्वयं विरंचि भी उलझन में पड़ गये होंगे क्योंकि ब्रह्मा जी का आसन कमल है, जब चन्द्रोदय होता है तब वह संकुचित हो जाता है। अतः इस नायिका के आसन से श्री ब्रह्मा के आसन का कमल संकुचित हो गया होगा और ब्रह्म जी के समक्ष एक समस्या उत्पन्न हो गई होगी।

जब विदूपक सर्व प्रथम सागरिका को देखा तब वह आश्चर्यचकित होकर कहने लगा कि निश्चित ही यह अद्वितीय सौन्दर्यवती है मैंने कभी नहीं देखा, स्वयं ब्रह्मा भी इसको बनाकर आश्चर्य में पड़ गये होंगे। जैसा कि अधोलिखित पंक्तियों में वर्णित है—

"ही ही भोः आश्चर्यम् ! ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते । तत्तर्कयामि प्रजापतेरपि एतन्निर्माय विस्मयः समुत्पन्न इति ।

वत्सराज उदयन भी स्वयं इसी उक्ति का समर्थन करते हुए कहता है कि—इस त्रैलोक्य सुन्दरी कामिनी की रचना करके विरंचिने भी आंख फाड़-फाड़कर देखा होगा । उनके चारों मुखों से साधुवाद निकला होगा और आश्चर्य के साथ सिर कांपने लगे होंगे यथा निम्न स्थ श्लोक में कहा है—

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष,
श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम् ।
शिरांसिचालितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा,
विधाय ललनां जगत्त्रय ललाम भूमिमाम् ॥"

इस लोकत्रय सुन्दरी रत्नावली को वनाकर ब्रह्मा भी आश्चर्य चकित दृष्टि से देखने लगे होंगे, उनके चारों मुखों से एक साथ साधुवाद निकल पड़ा होगा और निश्चय ही आश्चर्य से उनके सिर हिलने लगे होंगें ।

वत्सराज उदयन सागरिका के अतुलनीय लावण्य को देखकर ठीक ही समझता है कि यह लक्ष्मी है और उसके हस्त-परिजात के पल्लव हैं और उसके हाथों से स्रवित होने वाले सात्विक सीकर ही अमृत का स्राव ही है । जैसाकि अधोलिखित श्लोक से व्यक्त होता है कि—

"श्री रेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छदनामृतद्रवः ॥"

इसके अलावा रत्नावली का अतुलनीय सौन्दर्य सन्ताप की दूरी करने में पूर्ण रूपेण शक्त है और सागरिका का प्रत्येक अंग शान्ति, एवं शैत्य प्रदान करने वाला सुधा से व्याप्त है । उसका श्री हर्ष ने सागरिका के अंगों को बड़े ही कमनीय उदाहरणों द्वारा अलंकृत करते हैं कि उसका मुख चन्द्रवत्, नेत्र अरविन्दवत्, जंघायें कदलीस्तम्भ के अन्त भाग के सदृश सुन्दर है । इससे अधिक क्या कहें ? सकल अंग प्रत्यंग सन्तापहारी है । इस प्रकार का वर्णन इस अधोलिखित श्लोक में किया है—

"शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ, पद्मानुकारौ करौ,
रम्भागर्भनिभं तथोरुयुगलं, बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लाद कराखिलाङ्गि रभसान्निः शंकमालिङ्ग्यना—
मङ्गानि त्वमनङ्ग तापविधुराण्येह्येहिनिर्वापय ॥''

यह रत्नावली सौम्य रूपा तो है ही साथ ही साथ असाधारण लावण्ययुक्ता है और सुशीला, शालीनता युक्त तथा सहेलियों से अनुराग करने वाली है, वह साक्षात् प्रेम और सहृदयता की मूर्ति है। निम्नांकित सुसंगता का कथन इसके औदार्य आदि गुणों का परिचायक हैं। यही कारण है कि वह अलौकिक लावण्यमयी होने के कारण ही नेता राजा उदयन के लिये अत्यधिक प्रिय हो गई, इसका परिचय वत्सराज सुसंगता के साथ वार्ता से मिलता है तथा आंसी बहाता हुआ आहें भरता है और कहता भी है—

हा प्रिय सखि सागरिके ! हा लज्जावति !! उदारशीले हा सखीजन-वत्सले, हा सौम्य दर्शने !!! कुत्रेदानीं त्वं मया प्रेक्षितव्या। (इति रोदिति ऊर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च) अपि दैवहतक, अकरुण, असामान्य रूप शोभा तादृशी यदि त्वया निर्मिता तत्कस्मात्पुनरीदृशमव स्थान्तरं प्रापिता।''

इस प्रकार वत्सराज उदयन सागरिका के अप्रतिम लावण्य की प्रशस्ति का गान करता हुआ भाग्य की क्रूरता, दुष्टता का वर्णन करते हुए उलाहना देता है। जिस दैव ने इस असाधारण कृति का निर्माण करके इस शोचनीय दशा में डाल दिया है।

श्री हर्ष ने अपनी नाटिका की नायिका का चित्रण मुग्धा नायिका के रूप में किया है। समग्र नाटिका में सागरिका की भावुकता का ही चित्र दृष्टिगोचर होता है। श्री हर्ष की नायिका केवल अद्वितीय लावण्यवती ही नहीं थी अपितु वह भावुक हृदया ही थी। उसमें मुग्धा नायिका में होने वाली लज्जा है और साथ ही बाल सुलभ कौतूहल भी जो कि उसके हृदय में व्याप्त है। पट्टमहिषी प्रद्योतसुता वासवदत्ता के मना करने पर भी वह सिंहल देश में सम्पादित मदनोत्सव की तुलना यहां के कामोत्सव से करती है। उसकी भावुकता का परिचय भी कामोत्सव में मिलता है कि वह कामोत्सव में वत्सराज उदयन के प्रथम दर्शन से ही अपने आपको उसके अधीन समझने लगती हैं। इसके अति-रिक्त सागरिका जानती थी कि महारानी वासवदत्ता के होने पर तथा उसके पीछे से उदयन से प्रेम करना दुःकरकर्म है परन्तु वह यह जानती थी कि

इसका परिणाम ठीक नहीं होगा फिर भी वह अपने जीवन रूपी सुमन को उदयन पर न्योछावर कर देती है। रत्नावली का प्रेम अत्यन्त गाम्भीर्ययुक्त है वह प्रेम के निर्वाह हेतु समग्र असह्य कष्टों को सहन करने में संकोच नहीं करती है। यहां तक कि वह अपने प्राणों की आहुति देने को तत्पर हो जाती है परन्तु वह उदयन से अपने प्राणों की रक्षा एवं सहायता के लिये कभी कुछ नही कहती है।

वह वत्सराज उदयन को कामोत्सव में साक्षात् मकरध्वज की भांति देखती है और कहती भी है—

"कथं प्रत्यक्ष एव भगवान् कुसुमा युधः इह पूजां प्रतीच्छति।"

क्या यहां भगवान् कुसुमायुध प्रत्यक्ष होकर पूजा ग्रहण करते हैं। (ऐसा विचार कर) उत्कंठित नयनों मे प्रसन्नता के साथ राजा का अवलोकन करती हुई वह अपने चेरी भाव युक्त जीवन को भी धन्य मानती है कि वह दासी भी धन्य है कि जिसके रूप मे उसने वत्सराज उदयन का अद्वितीय सौन्दर्य देखा—

"कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेनदत्ता (दीर्घं नि श्वस्य)
तत्परप्रेषण दूषितमपि ते जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृत्तम्॥"

जब प्रधान रानी वासवदत्ता कामोत्सव के कार्य को सम्पन्न करके जाने लगती है तो इस भावुक चिन्ता एवं मुग्धा का अप्रत्याशित दर्शन राजा को प्राप्त होता है।

राजा इस अद्वितीय लावण्य से ठगा जाने के कारण अत्यन्त कष्ट का अनुभव करता हुआ सहसा कहता है कि—

"कथं प्रस्थिता देवी! भवतु। तदहमपि त्वरितं गमिष्यामि। (राजानं सस्पृहं दृष्टवानि:श्वस्य) हाधिक् हाधिक्, मन्दभागिन्यामया प्रेक्षितुमतिचिरं न पारितोऽयंजन:।"

इस असाधारण एव स्वाभाविक प्रेम के प्रभाव से उसका अंग प्रत्यंग धड़क उठता है और भावावेश वश राजा के दर्शन के अभाव में उसका चित्र तन्मयता के साथ चित्रित करती है और अपने मन को आश्वस्त एवं शान्ति प्रदान करती है।

इसकी भाव तन्मयता ऐसी है कि यदि वह अपने प्रेम में किञ्चित् भी विघ्न का अनुभव करती है तो अत्यधिक उदविग्न होकर प्राण त्याग करने का भी यत्न करने लगती है। राजा के दर्शन से ही वह काम पीड़ित हो उठती है और कामपीड़िता वह कहने लगती है कि—

"सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेन उपस्थितमे।"

इस कामपीड़ोत्पन्न सन्ताप की शान्ति हेतु किये गये उपकरण कमल पत्र पर शयन, मृणालवलय आदि सभी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि वह इन उपायों को दूर करने के लिये कहती है कि—

"सखि ! अपनयेमानि नलिनीपत्राणि मृणालवलयानि च। अलमेतैः। किमित्यकारणम् आत्मानमायासयसि। ननुभणामि। (वतोहि)

दुर्लभजनानुरागो लज्जागुर्वी परवश आत्मा।
प्रिय सखि ! विषमं प्रेममरणं शरण-न वरमेकम्॥"

हे सखि ! ये सब नलिनी-पत्र शयन, मृणाल वलय आदि दूर करो ये तो सब व्यर्थ ही कष्ट सह रही हो (क्योंकि देखो) मैंने अलभ्यनीय व्यक्ति से प्रेम किया है, लज्जा अधिक है (फिर मैं) पराधीना हूं अर्थात् वासवदत्ता की सेविका हूं। हे प्रिय सखि !! इस दशा में प्रणय करना एक अत्यन्त कठिन है। अब तो केवल एक ही मार्ग है और वह है यमद्वार का जाना। अतः इन शैत्य प्रदायक उपकरणों को दूर करो।

इसके अतिरिक्त जिस समय वत्सराज उदयन के हाथ में उसका चित्र जा पहुंचा तब वह स्वयं राजा के विचार ज्ञात करने के लिये सुनती है कि राजा क्या कहेंगे यदि अच्छा बतायेंगे तो ठीक है अन्यथा प्राणों को तो छोड़ना है ही क्योंकि सागरिका का प्रणय प्रथमांक में ही सीमा पार कर चुका था, वहाँ से मन को लौटाया नहीं जा सकता है। वह अपने मन में कहने लगती है कि—

"किमेषभणिस्यतीतियत्सत्यं जीवितमरणयोरन्तरालेवर्ते।"

केवल एक बार दर्शन के समय में ही इतनी दूर प्रेम प्रणय मार्ग से निसृत हुआ है कि इस प्रणय मार्ग से लौटना ही असम्भव हो जाये तो उसकी यह भावुकता एवं मुग्धापन नहीं है तो और क्या है? यही कारण है कि जब सागरिका वत्सराज उदयन के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कहने लगती है

यद्यपि सागरिका का यह उन्मत्त प्रणय निरन्तर अबाधित गति से प्रवाहित होता है तथापि उसके चित्त में यह संकोच बना रहता है कि कहीं उसका प्रेम कोई जान न लेवे। यही कारण है कि जब सागरिका और वत्सराज उदयन का प्रणय रहस्य दूसरों पर प्रकाशित हो जाता है तो उस लज्जा के कारण अपना मुख छिपाती है परन्तु यदा कदा उसकी सखियाँ उसको देखकर हंसती हैं तो वह लज्जा का अनुभव करती है यथा निम्नस्थ श्लोक में वर्णित है—

"ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं,
द्वयोर्दृष्ट्वाऽऽलापं कलयति कथामात्म विषयाम्।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं,
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा॥"

सागरिका कोमल चित्ता नायिका है कि जिस समय वह जानती है कि यह महिषी वासवदत्ता उसके प्रणय-रहस्य को जान गई है और संकेतित गुप्त स्थान पर राजा के न मिलने पर वह भयातुर हो जाती है कि यदि महारानी जी हमारे गुप्त अभिसार के रहस्य को जान लिया तो मृत्यु के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। अतः मृत्यु का चुम्बन कर अपनी ग्रीवा में लतापाश से फांसी लगाने का प्रयत्न करने के लिये कहती है कि—

"दिष्ट्यानाहमनेन विरचित वेषेणास्याश्चित्रशालाया निष्क्रामन्ती केनापि लक्षितास्मि। तदिदानीं किं करिष्यामि। सास्त्रं चिन्तयति। (विमृश्य) वर-मिदानीं स्वयमेवात्मानमुदवध्यो परता न पुनर्ज्ञातवृत्तान्तया देव्या परिभूतास्मि। तद यावपहमशोक पादपं गत्वा यथा समीहितं करिष्यामि।"

अर्थात् भाग्य व. वासवदत्ता का वेषधारी चित्रशाला से निकलते हुए मुझ को किसी ने नहीं देखा, तो अब क्या करूं? (मन में विचारकर) अच्छा तो इसी में है कि मैं स्वयं गले में फांसी लगाकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूं। अन्यथा वासवदत्ता मेरे इस मिलन के समाचार को जानकर संकेत प्रदत्त स्थान पर पहुंच गई मेरी क्या दशा करेगी, कुछ कहने में नहीं आता। अतः अशोक वृक्ष के समीप जाकर अपने आपको फांसी लगाने का कार्य पूरा करूँ। कुलीना सागरिका केवल यही सोच कर नहीं बैठती अपितु लज्जा वश तथा विवश होकर अपने गले में लता-पाश का फन्दा फांसी लगाने के उद्देश्य से डाल लेती है, परन्तु भाग्यवश जो होना

होता है, होता वही है। सागरिका का लता-पाश समाप्त हो जाता है और अपने अभिमित उदयन के बाहु पाश के रूप में परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् भाग्यवश उदयन वहां आकर उसे लता पाश से छुड़ाते हैं और अपने बाहुपाश के प्रगाढ़ आलिंगन से जकड़ लेता है, उसको बाहुपाश से कण्ठाभरण बना लेता है और कहने लगता है कि—

"अयि साहसकारिणि किमिदमकार्यं क्रियते।
मम कण्ठगता प्राणाः पाशे कण्ठगते तव।
अतः स्वार्थः प्रयत्नोऽयं त्यज्यतां साहसप्रिये॥"

वत्सराज उदयन कहता है कि—अरी! दुःसाहसपूर्ण कार्य करने वाली यह अकरणीय कार्य को क्यों कर रही हो? तुम्हारे गलस्थ लतापाश का अवलोकन करते ही मेरे भी प्राण गले में आकर, इस देह का परित्याग करने को तैयार हो गये थे। तुम्हारे गलस्थ लतापाश को मुक्त कराने में भी मेरी स्वार्थपरता निहित है।

हे प्रिय! तुम इस दुष्कर प्रयत्न का त्याग करो। इस परिस्थिति में भी वह सागरिका केवल वत्सराज के दर्शन से अपने आपको धन्य मानती है, जिससे उसका हृदय जीवन के प्रति मोह और उत्साह की तरंगों से तरंगित होने लगता है। फिर भी वह अपनी पराधीनता एवं परवशता का ध्यान करती हुई मृत्यु में ही सुख का अनुभव करती हुई कहती है कि—

"कथमेष भर्त्ता(सहर्षमात्मगतं) यत्सत्यमेनं प्रेक्ष्य पुनरपि मे जिविताभिलाषः वृत्तः। अथवैनं प्रेक्ष्य कृतार्था भूत्वा सुखेनैव जीवितं परित्यक्ष्यामि (प्रकाशम्) मुञ्चतु मां भर्त्ता। पराधीनः खल्वयं जनः पुनरीदृशमवसरं भर्तुः प्राप्नोति।" (इति पुनः कण्ठे पाशं दातुमिच्छति)

यह तो सागरिका स्वयं जानती है कि उसका प्रिय उदयन उससे अत्यन्त प्रणय करता है तब भी वह मुग्धा नायिका होने के कारण और भावुक चित्ता होने के कारण महारानी द्वारा बन्दी बनी हुई राजभवन में ही बन्दी जीवन व्यतीत करती हुई, ऐन्द्र जालिक के द्वारा राजभवन में चारों ओर आग लगी हुई देखकर अपनी मर्मान्तक जीवन-लीला का शुभ अवसर समझती है यथा कि—प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट हो रहा है—

"दिशोऽवलोक्य) अधिकं समन्ततः प्रज्वलितः हुतवहः। (विचिन्त्य सपरितोपम्) अद्य हुतवहो दिष्टया करिष्यति मम दुःखावसानम्।"

वत्सराज उदयन के अनुरोध से सागरिका की रक्षा हेतु उसके पास पहुंचता है तो राजा को अचानक देखकर उसके चित्त में पुनः प्रेम की अजस्रधारा प्रवाहित हो उठती है कि—स्वामी जी ! बचाइये मेरी इस ज्वलिताग्नि ज्वाला से रक्षा कीजिये यथा कि श्री हर्ष ने लिखा है कि—

राजानं दृष्ट्वा। (स्वागतम्) कथमपि आर्य पुत्रः। तदेनं प्रेक्ष्य पुनरपि मे जीविताभिलापः संवृतः। (प्रकाश) परित्रायतां परित्रायतां भर्ता।"

जब महारानी वासवदत्ता यह जानती है कि—वह मेरी बहिन रत्नावली है जो आज तक दासी के रूप में मेरी सेवा में रही और मैंने इसको अनेक कठोर कष्ट दिये हैं इत्यादि पाश्चाताप का अनुभव करके तुरन्त रत्नावली को वत्सराज उदयन के हाथों में प्रदान कर देती है तब उस समय रत्नावली को भी रहस्य का ज्ञान होता है कि यह महारानी वासवदत्ता मेरी ज्येष्ठ बहिन है और मैंने यह क्या किया कि उनके प्रियतम से ही प्रणय करके बहिन के प्रेम में विघ्न बनकर उपस्थित हो गई है। इत्यादि अपने आचरणों का स्मरण करके पश्चात्ताप से पराभूत हो रही है और लज्जा तथा ग्लानि से अपना मुखारविन्द नीचे किये गये हुए है। महारानी वासवदत्ता के सामने मुख को ऊपर करने का साहस भी नहीं कर पाती है। सागरिका का यह व्यवहार उसकी कुलीनोत्पन्नता स्त्रियोचित शालीनता, विनम्रता आदि गुणों को स्पष्ट कर रहा है, यथा नीचे लिखी हुई पंक्तियों में स्पष्ट रूप देखा जा सकता है—

"(समाश्वस्य वासवदत्तां दृष्ट्वा स्वगतम। कृतापराधा खल्वहं देव्या न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम्। इत्यधोमुखी तिष्ठति।"

प्रस्तुत नाटिका की नायिका राजकुमारी रत्नावली सर्वगुण सम्पन्ना है जो कि एक उच्च कुलोत्पन्न राजकन्याओं में होने चाहिये। इन गुणों के अलावा रत्नावली चित्रकला में परमप्रवीण है। राजा का जो चित्र बनाया था, उससे उसका चित्र कौशल परिलक्षित होता है। उसके चित्रकला की प्रशंसा करती हुई सागरिका की प्रिय सखी सुसंगता कहती है कि—"अहोते चित्रनैपुण्यम्।"

यही नहीं वत्सराज उदयन और उसके मित्र विदूषक रत्नावली के चित्र कौशल की प्रशंस्ति का गान करते हैं। इस प्रकार रत्नावली भावुक-हृदया, मुग्धा नायिका एवं सहिष्णुता और धैर्य की साक्षात् प्रतिमा है।

राजकुमारी रत्नावली के द्वारा जो चित्र प्रस्तुत नाटिका में प्रस्तुत किया गया है, वह विरंचि विधान की विडम्बना का चित्र है। दुर्भाग्य वश बेचारी को इतनी विषमताओं का सामना करना पड़ा, उससे बड़े साहस एवं धैर्य से निपटती है। सागर में जल-पोत के नष्ट हो जाने पर किस प्रकार प्राणों की रक्षा की, वहां व्यापारियों द्वारा राज्य मन्त्री यौगन्धरायण को दी गयी अन्त में महारानी वासवदत्ता की चेरी बनकर रहना पड़ा और इसी प्रसंग में उसका नाम रत्नावली से बदलकर सागरिका रखा गया। रत्नावली स्वयं इस बात को जानती थी कि वत्सराज उदयन के साथ विवाह के लिये राजा उदयन के पास पिता द्वारा प्रेषिता हूं परन्तु जलपोत के नष्ट हो जाने के कारण वह वहीं आ गई जहां कि पिता द्वारा भेजना अभीष्ट था। वहां रानी (पटरानी) न होकर भी एक दासी-वृत्ति से निर्वाह करने में भी धैर्य और सहिष्णुता की महती आवश्यकता है। परन्तु राजकुमारी होने पर भी दासीभाव में सागरिका को किसी काम के करने में संकोच नहीं है। इसके अलावा कामोत्सव के समय पर वह कामवेषधारी उदयन को देखकर आसक्त हो जाती है, क्रीडोपवन में चित्र बनाकर अपना मनोविनोद करती है। सुसंगता नायिका दासी की सहायता से वासवदत्ता के वेष में उदयन के साथ अभिसार को प्रस्थान करती हैं परन्तु रहस्य के खुल जाने पर बन्दी के रूप में ही अज्ञात स्थान पर बन्द कर दी जाती है, फिर भी वह अपनी दासी-जीवन के रहस्य को खोलती नहीं है। इस प्रकार रत्नावली की सहिष्णुता, धैर्य एवं गाम्भीर्य का चित्र स्पष्ट दृष्टिगत होता है। परिस्थितियां के वैषम्य के पश्चात् अदभुत शक्ति रत्नावली को प्राप्त होती है। यद्यपि वत्सराज उदयन उसका नाम भी नहीं जानता था परन्तु उसके गुणों की श्रेष्ठता से प्रभावित होकर उसे 'रत्नावली' के नाम से अलंकृत किया है।

वास्तविकता यह है कि—रत्नावली में श्रेष्ठ सौन्दर्य, आर्जवता, सहिष्णुता, सौन्दर्य, शालीनता, भावुकता, धैर्य, सरलता, मुग्धात्व एवं सरसता

आदि गुणों की अवली है। यदि हम इन गुणों को तो रत्न मान लें तो, उनकी अवली इस नायिका मे दृष्टिगत होती है अतः वह 'रत्नावली' सार्थक नाम है एवं नाटिका को अन्वर्थता प्रदान करने वाली है।

प्रश्न १२—संस्कृत नाट्य साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ भरतमुनि द्वारा प्रणीत "नाट्य शास्त्र" है इस कथन की वास्तविक समीक्षा कीजिए।

यह निर्विवाद है-कि-भरतमुनि का "नाट्य शास्त्र" ही सर्वाधिक प्राचीनतम नाट्य शास्त्र का ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ रत्न केवल नाट्य शास्त्र का ही नही अपितु सगीत, नृत्य, तथा अलंकार आदि साहित्यिक परम्पराओ का मार्ग-दर्शक माना जाता है। प्राचीन विद्वानों ने भरत का नाम निम्न दो नामों से आदर के साथ अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है।

(१) आदि भरत अथवा वृद्धभरत, (२) भरतमुनि।

नाट्य शास्त्र—इसी प्रकार यह भी कहा जाता है-कि नाट्य शास्त्र को भी दो नामों से (१) नाट्य वेदांग और (२) नाट्यशास्त्र के नामों से, अभिहित किया जाता है। इस के अतिरिक्त 'नाट्य वेदांग". को "द्वादश साहस्री" और नाट्यशास्त्र को "षट्साहस्री" के नामों से अभिहित किया जाता है।

भरतमुनि के अविर्भाव काल के सम्बन्ध में विद्वानों में एकमत नहीं प्राप्त होता है। कतिपय समीक्षकों ने भरतमुनि का समय ईस्वी पूर्व द्वियीय शताब्दी माना है। तो कुछ समीक्षक भरतमुनि का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी तथा तृतीय शताब्दी माना है। कुछ विद्वान् तो वर्तमान उपलब्ध "नाट्य-शास्त्र" का रूप भी तत्कालीन नही मानते हैं। डा० एस० के० दे० के मतानुसार नाट्यशास्त्र का संगीत वाला अध्याय लगभग चतुर्थ शताब्दी में रचा गया होगा। और उसके बाद नाट्यशास्त्र में पर्याप्त परिवर्तन हो गया होगा अतः वर्तमान संस्करण का प्रणयन आठवीं शताब्दी में हुआ होगा। भरतमुनि का समय विवादास्पद तो है ही तथापि अतरंग एवं वाह्य प्रमाणों से भरतमुनि के समय का विवेचन करना तर्क सगत होगा।

(१) कविकुल गुरु कालिदास ने अपने नाटक "विक्रमोर्वशीयम्" में भरत-मुनि के नाम का स्मरण करते हुए लिखा है कि—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो,
भवतीष्वष्ट रसाश्रयो निवद्धः।
ललिताऽभिनयं तमद्य भर्ता,
मरुतां द्रष्टुमना स लोकं।

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि भरतमुनि और उनके नाट्यशास्त्र की पर्याप्त प्रसिद्धि कालिदास के समय तक हो चुकी थी। अधिकांश समीक्षक विद्वान् कालिदास का समय चतुर्थ शताब्दी मानते हैं अतः कालिदास से पूर्व भरतमुनि हुए थे यह तो निश्चित हो जाता है। (२) इसके अतिरिक्त "नाट्य-शास्त्र" मे ऐन्द्रव्याकरण और यास्क के उद्धरणों का उल्लेख किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि नाट्यशास्त्र की रचना पाणिनि व्याकरण की प्रसिद्धि से पहले हो चुकी थी। (३) नाट्य शास्त्र की भाषा एवं उसके विषय-वस्तु की प्रतिपादन शैली से भी यह सिद्ध होता है कि नाट्य शास्त्र की रचना प्राचीनतम है। (४) अभिनव गुप्त ने भी भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र का संकेत करते हुये लिखा है कि "भरतसूत्रमिद विवृण्वन्"।

नाट्यशास्त्र—यह भरतमुनि का नाट्य शास्त्र ३७ अध्यायों में प्राप्त होता हैं। इस विषय में कुछ विद्वानों का कहना है कि अभिनव गुप्त शैव मतानुयायी थे अतः ३६ अध्यायों की रचना स्वीकार करके शैवतन्त्र के ३६ तत्वों से समानता प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। परन्तु इस विषय में प्रमाण पूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है तथापि इससे यह प्रतीत होता है कि भरतमुनि का यह "नाट्यशास्त्र" एक प्रामाणिक एवं प्राचीनतम प्रतिष्ठित नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ रत्न था और है।

संस्कृत साहित्य में नाटक की उत्पत्ति का वर्णन सर्वप्रथम भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय का नाम भी "नाट्योत्पत्ति" है। भरतमुनि के मतानुसार नाट्य-साहित्य एक पांचवां वेद है। जिसकी रचना इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने की हैं। इसी आशय को स्पष्ट करने के लिये भरतमुनि ने कहा है कि—

महेन्द्र—प्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकामिच्छामः दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्॥

इसका आशय यह है कि देवराज इन्द्र ने देवताओं सहित ब्रह्माजी से निवेदन किया है कि हम सब (देवगण) एक ऐसा खिलौना अथवा खेल चाहते हैं जो देखने और सुनने योग्य हो। इस प्रकार ब्रह्माजी इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना से प्रेरित होकर चारों वेदो का ध्यान करके "नाट्य वेद" नामक पंचम वेद की रचना की जैसा कि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के निम्न श्लोक से प्रकट हो रहा है।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेवच।
यजुर्वेदादभिनयां रसानथर्वणादपि,
वेदोपवेदः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना,

इसका आशय यह है कि ब्रह्माजी ने चारों वेदों और उपवेदों से सम्बन्धित पंचम वेद नामक नाट्य वेद की रचना की है इस प्रकार सर्वविद्या विशारद ब्रह्माजी ने नाट्य वेद की रचना करके इन्द्र से कहा कि हे देवराज अब तुम इस नाट्यवेद का अभिनय देवताओं से करवाइये। अर्थात् अभिनय की कला में निपुण देवताओं को इसका अभिनय करने के लिये कहो। परन्तु इन्द्र ने ब्रह्माजी से देवताओं को अभिनय की कला में असमर्थ बताया तो फिर ब्रह्माजी ने नाट्यवेद के अभिनय करने की भरतमुनि ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर अपने पुत्रों को नाट्यवेद के अभिनय की शिक्षा दी और इन्द्र के विजयोत्सव पर सर्वप्रथम नाट्यवेद का अभिनय कराया गया। इस विजयोत्सव में इन्द्र की विजय और राक्षसों की पराजय का अभिनय किया गया। जिससे राक्षसगण असन्तुष्ट होकर अभिनय में विघ्न उपस्थित कर दिया। दैत्यों के इस विघ्न से व्यथित इन्द्र ने विश्वकर्मा को नाट्यगृह बनाने की आज्ञा दी विश्वकर्मा ने इन्द्र की आज्ञा, से नाट्यगृह की रचना आरम्भ की फिर ब्रह्माजी ने दैत्यों को समझाया कि इस नाट्यवेद में धर्म, क्रीडा, शृंगार, हास्य, वीर आदि सभी विषयों का चरित्र चित्रण किया गया है। यह नाट्यवेद देव तथा दैत्य दोनो के लिये बनाया गया है।

शृङ्गारहास्य करुण द्रौ—वीर—भयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥

दैत्यों के असन्तोष को दूर करते हुये ब्रह्माजी ने नाट्यवेद का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

अर्थात् यह नाट्यवेद दुःख से व्यथित, श्रान्त, शोक सन्तप्तजनों के लिये उचित समय पर शांति उत्पन्न करने वाला अथवा शक्ति देने वाला होगा इसी भाव को निम्नस्थ पद्य के माध्यम से देखा जा सकता है—

धर्म्यं यशस्यमायुष्य हितं बुद्धि—विवर्द्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

ब्रह्माजी की आज्ञा से भरतमुनि अपने पुत्रों को अभिनय की शिक्षा देकर ब्रह्मा के पास उपस्थित होते हैं तो ब्रह्माजी की आज्ञा से विश्वकर्मा ने नाट्यशाला का निर्माण किया । तब भरतमुनि ने शिष्यों के द्वारा "अमृत-मन्थन" नामक "समवकार" और "त्रिपुरदाह" नामक "डिम" का अभिनय कराया । देवता और राक्षस अभिनय को देखकर हर्षोन्मत्त होकर कहने लगे कि—हे महामते आपके द्वारा निर्मित यह नाट्यवेद अत्यन्त मनोरञ्जक एवं सुन्दर है । जैसा कि निम्नस्थ श्लोक से स्पष्ट हो रहा है—

अहो नाट्यमिदं सम्यक् त्वया सृष्टं महामते ?
यशस्यं च शुभार्थं च पुण्यं बुद्धिविवर्धनम् ।।

इस प्रकार यह नाट्यवेद भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार नाट्य विद्या एक पंचम वेद है । यद्यपि नाट्यकला का आविर्भाव ब्रह्माजी के द्वारा हुआ और उसका अभिनय भरतमुनि ने कराया । परन्तु इससे भी पूर्व विरचित चारों वेदों में नाटक के प्रमुख अंगों का स्पष्ट वर्णन मिलता है । नाट्य के प्रमुख अंग (१) सम्वाद, संगीत, नृत्य के बीज किसी न किसी रूप में वेदों में प्राप्त होते हैं । उदाहरण के लिए ऋग्वेद में यमयमी-सम्वाद, पुरुरवा के कथोपकन के बीज हैं इसी लिये कहा है कि—जग्राह पाठ्यमृग्वेदाद् । नाटकों में गेयगीतों के बीज है । इसी आशय को व्यक्त करने के लिये कहा है कि "सामभ्यो-गीतमेवच" । "यजुर्वेदादभिनयान्" कहा है । इसी प्रकार शृंगार, हास्य, करुण, वीर आदि रसों के बीज अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं इसीलिये भरतमुनि

ने "रसानाथर्वणादपि" लिखा है। इस प्रकार यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नाटक के सभी बीज वेदों में विद्यमान हैं उन्हीं से इस पंचम वेद (नाटक) की उत्पत्ति हुई है।

प्रश्न १३—संस्कृत प्रतीक नाटकों के परम्परा का परिचय प्रस्तुत करते हुये समीक्षात्मक विवेचन कीजिये।

रूपात्मक अथवा प्रतीकात्मक नाटक भी संस्कृत साहित्य में प्राप्त होते हैं पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में कहा है कि—"संस्कृत साहित्य में एक नये प्रकार के रूपक उपलब्ध होते हैं जिनमें श्रद्धा; भक्ति आदि अमूर्त पदार्थों को नाटकीय पात्र बनाया गया है कहीं तो केवल अमूर्त पदार्थों को ही मूर्त्त कल्पना उपलब्ध होती है और कहीं पर केवल अमूर्त्त का मिश्रण है। साधारण नाटक के लक्षण से इसमें किसी प्रकार पार्थक्य नहीं मिलता। इसीलिये नाट्य के लक्षण को हमने "प्रतीक" नाटक कहा है। क्योंकि इनके पात्र अमूर्त पदार्थों के प्रतीकमात्र होते हैं। उनकी भौतिक जगत में स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। श्री वरदाचार्य ने प्रतीक या रूपकात्मक नाटकों का उद्भव कवियों और विद्वानों की निर्जीव वस्तुओं और मानवीय गुणों को मूर्तरूप देकर वर्णन करने में ढूढ़ा है। उन्होंने लिखा है कि दर्शनों की उत्पत्ति और विकास ने तथा नैतिक शिक्षाओं की आवश्यकता ने इस प्रकार के मूर्तीकरण को बहुत सहायता और बल प्रदान किया है। इस प्रकार के मूर्तीकरण को बहुत सहायता प्रदान की। इस प्रकार की मूर्तीकृत वस्तुओं आदि को नाटकों में भी स्थान प्राप्त होने लगा और वे व्यक्ति के स्थान पर आने लगे। जिन नाटकों में से मूर्तीकृत पात्रों को स्थान दिया गया है उनमें से प्रमुख पांच ये हैं—विषक, मोह, काम, दम्भ, अहंकार"।

अश्वघोष—अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप प्रदान कर प्रतीकात्मक रूपक के रचयिता अश्वघोष का नाम विद्वानों ने उद्धृत किया है। यह प्रतीक नाटक खंडित दशा में अश्वघोष "शारिपुत्र-प्रकरण" के हस्तलेख में संकलित है। यद्यपि प्रबल प्रमाण न होने के कारण इसके रचयिता (प्रतीक) अश्वघोष ही

है, ऐसा नहीं कह सकते हैं तथापि भाषा एवं शैली की समानता से तथा शारिपुत्र प्रकरण और इस प्रतीकात्मक रूप की हस्तलिपि की समानता होने के कारण इस प्रतीकात्मक का निर्माता अश्वघोष को ही माना जाता है। इस नाटक में धृति, बुद्धि, कीर्ति आदि का मानवीय पात्रों की भांति चित्रण किया गया है।

कृष्ण मिश्र—महाकवि अश्वघोष के द्वारा आविर्भूत प्रतीकात्मक नाट्य-कला का दर्शन १००० ई० में कृष्ण मिश्र की रचना "प्रबोध चन्द्रोदय" में प्राप्त होता है। डा० कीथ ने कहा है कि—

"कहा नहीं जा सकता कि कृष्ण मिश्र का "प्रबोधचन्द्रोदय" नाटक के उस रूप का (जो अश्वघोष के समय से ही एक छोटे पैमाने पर ही प्रयुक्त होता रहा) पुनरुज्जीवन है अथवा एक सर्वथा नवीन रचना है (जिसका होना सहज सम्भव है)।

कृष्ण मिश्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी में माना जाता है। आपका "प्रबोध चन्द्रोदय" संस्कृत साहित्य का एक प्रतीकात्मक श्रेष्ठ नाटक है। जिसका अभिनय जेजाकभुक्ति के चन्देल राजा कीर्ति वर्मा ने कराया था पं० बलदेव उपाध्याय जी ने प्रबोध-चन्द्रोदय की प्रशंसा करते हुए कहा है कि—

इस रूपक में अद्वैत वेदान्त तथा विष्णु भक्ति का सम्मिलित बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया गया है। राजा मोह के पंजे में फंस जाने के कारण पुरुष अपने सच्चे स्वरूप के ज्ञान से भी वंचित हो जाता है। विवेक के द्वारा जब मोह का पराजय होता है तभी पुरुष को शाश्वत ज्ञान उत्पन्न होता है। विवेक पूर्वक उपनिषद के अध्ययन करने तथा विवेक भक्ति के आश्रय लेने से ही ज्ञान रूपी चन्द्रमा का उदय होता है इस विषय का प्रतिपादन बड़ी ही युक्ति तथा सुन्दरता के साथ किया गया है। पात्रों में सजीवता है। द्वितीय अंक में दम्भ और अहंकार का वार्तालाप अतीव हास्योत्पादक है। इसी प्रकार का हास्योत्पादक कौतुहल जैन, बौद्ध तथा सोम सिद्धान्त के परस्पर वार्तालाप के अवसर पर दर्शकों को होता हैं। कृष्ण मिश्र उपनिषदों के

वेत्ता थे, यह कहना रहस्य आवश्यक है। कवित्व का चमत्कार इस नाटक में कम नहीं हैं। अद्वैत वेदान्त तथा वैष्णव धर्म का समन्वय इस नाटक की महती विशेषता है।

यशः देव—कृष्ण मिश्र के बाद भी प्रतीक नाटकों की रचना समय-समय पर होती रही है। जैन कवियों ने अपने जैन धर्म के प्रचारार्थ प्रतीकात्मक नाटकों की रचना की, जिसमें "मोहराज की पराजय" नामक रूपकात्मक नाटक अति-प्रसिद्ध हैं। इस रचना का आधार कृष्ण मिश्र का "प्रबोध-चन्द्रोदय" नामक नाटक है।

यशः देव जाति से वैष्णव थे। इसके माता-पिता का नाम रुक्मणी और धनदेव था। राजा हेमचन्द्र और विदूषक केवल दो पात्रों को छोड़कर अन्य सभी पात्र सत् गुणों के मानवीय रूप हैं। इसमें पांच अंक है। इस नाटक का मुख्य वर्ण्य विषय अन्हलबाड़ के राजा कुमारपाल का आचार्य हेमचन्द्र से दीक्षा ग्रहण करना है डा० कीथ ने कहा है कि—

"निश्चय ही यह नाटक गुण रहित नहीं हैं। इसकी भाषा सरल संस्कृत है, यह इसकी विशेषता है। इसमें राजा कुमारपाल पर जैन धर्म का स्पष्ट प्रभाव चित्रित किया है। इससे गुजरात के इतिहास के विषय में अभिलेखों तथा अन्य स्रोतों पर से प्राप्त जानकारी पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है"

वेदान्त देशिक—आपका समय तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। आप रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षित वैष्णवमतावलम्बी एवं महाकवि और नाटककार भी हैं। शान्तरस प्रधान "संकल्प सूर्योदय" नामक एक प्रतीकात्मक नाटक की रचना की है। इस नाटक में मोह की पराभूति और विवेक के उत्कर्ष का चित्रण किया गया है। दार्शनिक तत्वों का अधिक चित्रण होने के कारण इसमें नीरसता की मात्रा अधिक होती है तथा कला की दृष्टि से यह श्रेष्ठ प्रतीकात्मक नाटक है।

गोस्वामी परमानन्द दास "कर्णपूर"—आपका नाम परमानन्द दास है ये शिवानन्द के पुत्र थे। स्वामी चैतन्य देव ने आपको "कर्णपूर" नाम की उपाधि दी थी। इनका समय १६ वीं शताब्दी माना जाता है। आपकी रचना "चैतन्य चन्द्रोदय" है इसमें .० अंक हैं। महाप्रभु चैतन्य देव के जीवन

चरित्र को मूर्त और अमूर्त पात्रों के साथ सम्वाद कराते हुये चित्रित किया है। प्रतीक पात्रों में भक्ति विराग, कलि आदि पात्रों का चित्रण-आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में किया है। यद्यपि आध्यात्मिक अभिव्यंजना में यह सफल नाटक नहीं कहा जा सकता है। तथापि सम्वाद सौष्ठव मनोहर प्रतीत होता है।

आनन्दराय मखी (वेद कवि)—ये तंजौर के राजा शाह जी तथा शरभोजी राजा के प्रधान मंत्री थे। आपका समय १८ वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है इनके दो प्रतीक नाटक हैं (१) विद्या परिणयन और (२) जीवानन्दन प्राप्त होते हैं। इनमें शिव भक्ति का उत्कर्ष चित्रण किया गया है। ये दोनों प्रतीकात्मक नाटक की रचना प्रतीकात्मक रूप में की है।

इन रूपकात्मक अथवा प्रतीकात्मक-नाटकों की रचना का उद्देश्य दार्शनिक तथा धार्मिक तत्वों का सरल, सरस एवं सजीव चित्रण करना है ये नाटक मनोरंजन तथा शिक्षण एवं उपदेश प्रदान करने में समर्थ हैं।

प्रश्न १४ संस्कृत नाट्य-साहित्य में भाण, व्यायोग, छाया आदि विविध नूतन नाट्य विधाओं का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत कीजिये।

संस्कृत नाट्य-साहित्य भाण, व्यायोग, छाया आदि विविध नूतन नाट्य विधायों का परिचयात्मक विवेचन का प्रमुख स्थान माना जाता है। डा० एस० के० डे० ने भारत के नाट्य शास्त्र के आधार पर भाण के निम्नलिखित लक्षणों का संकेत दिया है—

(१) इसमें ऐसी स्थितियों का वर्णन होता है जिनमें अपने आप दूसरे के साहसिक कार्यों का पता चलता है।

(२) इसका नायक विट होता है।

(३) इसमें मौखिक संकेतों की प्रधानता होती है।

(४) इसमें आकाश भाषित प्रश्नोत्तर से आगे रहता है।

(५) इसमें लास्य का प्रयोग होता है पर श्रृंगार की द्योतक कौशिकी वृत्ति इसमें नहीं आती है।

दशवी शताब्दी के अन्तरार्द्ध में धनञ्जय के दशरूपक में भाण की रचना में "भारती वृत्ति" और वीर रस तथा श्रृंगार रस का प्रयोग किया

जाता है भरत तथा धनञ्जय ने "भाण" में हास्यरस के प्रयोग की चर्चा नहीं की है। परन्तु अभिनव गुप्त ने 'अभिनव भारती' नाट्यशास्त्र की टीका में भाण को प्रहसन कहा है और भाण में करूण, हास्य और अद्भुत रस की स्थिति स्वीकार की है। परन्तु शृंगार रसकी चर्चा नहीं की है। दशरुपक की भारती वृत्ति का प्रयोग होता है। इस प्रकार भाण में शृंगार रस और हास्य रसका अर्थात् दोनों (शृंगार और हास्य) का चित्रण वर्जित नहीं है।

चतुर्भाणिः—सन् ९२२ ई० में रामकृष्ण कवि ने चतुर्भाणि नामक चार प्राचीन भाणों का संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह में शूद्रक के द्वारा लिखित "पद्माप्राभृतक" ईश्वरदत्तकृत "धूर्तविट सम्वाद" वररूचिकृत "उभयाभिसारिका" श्यामतिलक कृत "पादताढितक" नामक चार भाणों का संकलन किया गया है। इस संग्रह के अनुवादक डा० मोतीचन्द्र और सम्वादक डा० वा सुदेव शरण अग्रवाल है। इन भाणों की रचना एक ही समय की प्रतीत होती है। डा० मोतीचन्द्र ने कहा है कि—

"भाणों की भाषा, भाव तथा अनेक ऐसे भीतरी प्रमाण हैं जिनके आधार पर उसका समय चौथी सदी का अन्त और पांचवी सदी का आरम्भ माना जाता है।"

शूद्रक के पद्माप्राभृतक में दो ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं जिनसे उसके रचना-काल का संकेत प्राप्त होता है डा० मोतीचन्द्र ने इस चतुर्भाणी का समीक्षाकृत अध्ययन करने के अनन्तर कहा है कि—

"उसके भाण गुप्तकाल में लिखे गये हैं। भाणो में वेश्या जीवन का शायद दत्तक के वैशिक सूत्र का आश्रय लेकर बहुत बारीकी के साथ चित्रण किया गया है। पर साथ ही वास्तविक जीवन और जीते जागते पात्र और पात्रियों का चित्रण उनकी खूबी है। आनुषंगिक रूप से गुप्तकालीन धर्म, व्यापार इत्यादि पर काफी प्रकाश डाला गया है। ये भाण गुप्तकालीन जीवन पर कितना प्रकाश डालते हैं इसकी सच्चाई का पता हमें तत्कालीन समाज की विलासिता पर व्यंग्य करना प्रतीत होता है। चतुर्भाणी के विट समाज के अंग है, इनका आमोद-प्रमोदमय जीवन अश्लीलत्व को भी प्राप्त हो जाता है।

भाणों की सम्वाद शैली मनोरंजक एवं प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक प्रतीत होती है।

डा० मोतीचन्द्र ने चतुर्भाणी की कथावस्तु की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "चतुर्भाणी के चारों भाण वेश्याओं और उनके कामुको से सम्बन्ध रखते हैं। वेश्याओं के नखरे, मान, मानभंग, शृंगारलीला, खेलकूद, संगीत और नृत्य में कुशलता, कलाप्रिय प्रेमो को चूसना, कूटनियों का गरीब प्रेमियों को कला बताना, कामशास्त्र में कुशलता, मद्यपान, गोष्ठी प्रेम, कभी-२ प्रेमी को कला बताना कामशास्त्र में कुलता, मद्यपान गोष्ठी प्रेम, कभी-२ प्रेमी के विरह में कातरता, दूत अथवा दूती भेजकर प्रेमी, सन्देश कहलवाना इत्यादि का इन भाणों में सुन्दर वर्णन है। चतुर्भाणी से पता चलता है कि धर्म विरुद्ध होने पर वेश्या प्रसंग गुप्तकाल में नीच कार्य नहीं समझा जाता था।"

चतुर्भाणी में चित्रित जीवन के सांस्कृतिक एवं यथार्थ झाकियों से गुप्तकालीन भौगोलिक एवं राजनीतिक दशा का संकेत अवश्य प्राप्त हो जाता है। अतः चतुर्भाणी का समय चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध और पंचम शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना उचित प्रतीत होता है।–

(१) वामनभट्ट बाण का शृंगार भूषण, (२) काशीपति कविराज का मुकुन्दानन्द, (३) कांची के वरदाचार्य का वेसन्त तिलक, (४) रामचन्द्र दीक्षित का शृंगार तिलक, (५) वल्लाकवि का शृंगार सर्वस्व, (६) केरल के युवराज का रस-सदन, (७) महिष मंगल कवि का महिप मंगल, (८) रंगाचरी का पंचभाण विजय, (९) श्रीनिवासाचार्य का रसिकरंजन, (१०) रामवर्मन् की शृंगार सुधा, (११) और कालिंजर के वत्सराज का कर्पूरचरित। इन भाणों में कर्पूरचरित और मुकुन्दानन्द को छोड़कर अन्य शेष सभी भाणों की रचना दक्षिण भारत में हुई हैं।

व्यायोग—व्यायोग संस्कृत रूपक का एक भेद है इसमें एक अंक होता है। व्यायोग के अन्तर्गत भासकृत मध्यम व्यायोग, दूतवाक्य, घटोत्कच, कर्ण भार और उरुभंग प्रमुख माने जाते हैं। भारत के अन्दर एक लम्बी अवधि तक व्यायोग रचना का क्रम विच्छिन्न हो गया था। १२ वीं शताब्दी के लगभग

काञ्चनाचार्य ने "धनञ्जय विजय" रामचन्द्र कवि ने "निर्भय प्रेम" प्रह्लाद ने "पार्थपराक्रम" और कवि वत्सराज ने भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीय के आधार पर किरातार्जुनीय नामक व्यायोग की रचना की है।

छाया नाटक—यद्यपि संस्कृत-नाट्यशास्त्र में छाया-नाटक का नाम रूपक के दश भेदों के अन्तर्गत वर्णन नहीं किया गया है तथापि संस्कृत नाट्य-साहित्य में ऐसे कुछ नाटक प्राप्त होते हैं जिनका परिगणन "छाया नाटक" के अन्तर्गत कर सकते हैं। छाया-नाटकों की यह विशेषता होती हैं कि ऐसे नाटकों के पात्र सशरीर रंगमंच पर आकर अभिनय नहीं कर सकते हैं। अपितु उनको परछाई, ही पुतलियों के द्वारा पर्दे पर चलती है फिरती दृष्टिगोचर होती हैं। डा० पिशेल ने तो नाटकों की उत्पत्ति में छाया चित्रों का प्रमुख सहयोग माना है। डा० कीथ ने संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से पूर्व स्वीकार कर ली है।

१३ वीं शताब्दी में सुभट कवि द्वारा प्रणीत "दूतांगद" नामक रचना छाया नाटक है। इसका अभिनय चालुक्य वंशी राजा त्रिभुवनपाल की सभा में कुमारपाल की शोभा यात्रा के अवसर पर किया गया था। सोमेश्वर कवि ने सुभट कवि की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि—

सुभटेन पदन्यासः स कोऽपि समितीकृतः।
येनाऽधुनापि धाराणां रोमाञ्चो नापचीयते॥

इस दूतांगद मे रावण और दूत अंगद के सम्वाद का चित्रण प्राप्त होता है। १५ वीं शताब्दी रामदेव व्यास ने सुभद्रा परिणय नामक छाया नाटक की रचना की। खेद हैं कि संस्कृत नाट्य-साहित्य में छाया नाटकों का प्रणयन चल न सका। छाया नाटक की अपेक्षा प्रतीकात्मक अथवा रूपकात्मक नाटकों की लोकप्रियता अधिक पुष्पित और पल्लवित हुई?

रेडियो नाटक—संस्कृत नाट्य परम्परा में इस वैज्ञानिक युग के परिप्रेक्ष्य में सस्कृत नाटक की एक नवीन विधा "रेडियो रूपक" के रूप मे आविर्भूत हुई। श्री० मि० वेलणकर के दो नाटक "रेडियो नाटक" की विधा के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुके हैं जिनके नाम "प्राणाहुति"। प्राणाहुति में दो रूपक हैं—(१) हुतात्मा दधीचि, और रानी दुर्गावती। इनमें प्रथम नाटक आकाश-

वाणी दिल्ली से १९६३ में प्रसारित किया गया और द्वितीय नाटक १९६४ में प्रसारित किया गया है। इन दोनों रूपकों की रचना संगीतमय पद्यों में की गई हैं। वेलणकर के इन दो नाटकों के अतिरिक्त अन्य रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

(१) जवाहर गीता, यां चिन्तयामि नाटक, विरहलहरी; गीर्वाणमुवी, अहोरात्र, तमसो मा ज्योतिर्गमय हैं। इनमें दो नाटक हैं शेष भावकाव्य, स्फुट-काव्य, और खण्डकाव्य हैं। नाटकों के नाम (१) यां चिन्तयामि" और (२) तमसोमा ज्योतिर्गमय हैं।

रेडियो नाटकों की यह नवीन विधा धीरे धीरे विकसित हो रही है। प्रायः आकाशवाणी में ऐसे ही नाटक यथा समय प्रकाशित होते रहते हैं। डा० रमाकान्त शुक्ल कृत "दाराशिकोह" नामक रेडियो रूपक का प्रसारण १९७० में दिल्ली से किया गया है और अनेक विद्वानों के रूपक समय—समय पर आकाशवाणी से प्रकाशित होते रहते हैं।

सम्वादमाला—संस्कृत नाट्य-साहित्य में एक नवीन विधा "सम्वादमाला" है श्री आनन्दवर्धन रामचन्द्र पारखी की "साम्वादमाला" नामक रचना १९५७ ई० में निर्मित हुई। इसमें तेरह सम्वाद जिनके नाम (१) जयदेव पद्मावतीयम् (२) कोकिलाक्षकोयष्टिकीयम्, (३) सहस्त्रपत्रकहिल मोचकीयम्, (४) उपस्थिति पुस्तिका प्रणाशः, (५) निष्कूलशुष्ककूलकीयम्, (६) कार्यनिलय, वेलावसानम्, (७) नीलकण्ठमंजुहासिनीयम्, (८) आश्रम–सन्धिः, (९) कपिञ्जल कर्भलंगिकीयम्, (१०) करहाटककाकिकणीयम्, (११) कपित्थकरमर्दिकीयम्, (१२) कणिकारपरिव्याधकीयम् (१३) मरकन्द-मन्दार-मालीयम्। संस्कृत भाषा में विरचित ये १३ सम्वाद नाटकीय आनन्द प्राप्त कराने में समर्थ हैं। लेखक ने स्वयं इनके विषय में कहा है कि "यों ही मैंने इन सम्वादों को लिखना आरम्भ किया था। कल्पना' नहीं की थी कि इन्हे कोई आकार प्राप्त हो जायेगा परन्तु एक विचित्र भी प्रेरणा रही जिसने मनोरंजन की भावना से आरम्भ किये गये इस प्रयत्न को भी एक निश्चित आकार प्रदान कर दिया।

ये सम्वाद सब सरस मनोरंजकता से ओत प्रोत हैं बीच बीच में पद्य भी प्राप्त होते हैं। ये सम्वाद प्रायः लघुकाय होते हैं। इनमें एक से अधिक चित्रों

का दृश्य भी दृष्टिगोचर होता है। इनकी पात्र योजना नाटकों जैसी होती है "आश्रम सन्धि" का अर्थ आश्रम में मनोरंजन है। सन्धि का अर्थ अंग्रेजी में डिनर पार्टी है।

अनूदित नाटक—वीसवीं शताब्दी में विभिन्न भाषाओं के नाटकों का संस्कृत में अनुवाद हुआ है। अन्नत त्रिपाठी शर्मा नेशेक्सपियर के "ट्वैल्थ नाइट" नामक अंग्रेजी ड्रामा का अनुवाद "द्वादशीशत्रि:' के नाम से किया है। जिसका प्रकाशन १९६५ ई० में हुआ। आपसे पूर्व श्री कृष्ण–माचार्य महोदय ने शेक्सपियर के "मिड समर नाइट्स ड्रीम" नामक ड्रामा का अनुवाद "वासन्तिक स्वप्नाभिधान" के नाम से किया था अनन्त शर्मा त्रिपाठी ने "एजयू लाइक इट" का यथाते रोचते" के नाम से अनुवाद करके मनोरमा नामक पत्रिका के अंको में प्रकाशित कराया।

इसी प्रकार शेक्सपियर के अन्य कतिपय नाटकों का अनुवाद संस्कृत में हो चुका है। अतः हम सगर्व से कह सकते हैं कि संस्कृत नाट्य साहित्य प्राचीन और अार्वचीन दोनों प्रकार की समस्त नाट्य विद्याओं का उत्कृष्ट भण्डार एवं अन्य भाषाओं के नाट्य साहित्य के लिये प्रेरणा स्रोत तथा रत्नाकर हैं।



व्याख्या-भाग

(१) औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया,
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमे,
संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायाऽस्तु वः ॥

प्रसंग—महाकवि श्री हर्ष रत्नावली नाटिका के प्रारम्भ में निर्विघ्न नाटिका की समाप्ति की कामना से "नान्दी" पाठ के द्वारा पार्वती की वन्दना करते हुए सामाजिकों के कल्याण की कामना की है—

व्याख्यार्थ:—पार्वती प्रथम मिलन के अवसर पर उत्सुकता के कारण पति भगवान् शंकर की ओर जाने की) शीघ्रतावश जाती हुई, परन्तु वाभाभाविक लज्जा वश (पीछे की ओर) लौटती हुई, फिर पुनः सम्बन्धी स्त्रियों के प्रोत्साहित कथनों से शंकर के सामने लाई जाती हुई सामने पति शंकर को देखकर भय एवम् आनन्द का अनुभव करती हुई रोमाञ्चित दशा को प्राप्त होती हुई (इस प्रकार पार्वती की विलक्षण स्थिति को देखकर) हंसते हुई भगवान् शंकर के द्वारा आलिंगन की गई आप सभी सामाजिकों की रक्षा करें अर्थात् उपर्युक्त दशा वाली पार्वती तुम सभी सामाजिकों का कल्याण करें ।

विशेष—विवाह के अनन्तर स्त्रियों की स्वाभाविक दशा का सरस चित्रण करते हुए श्री हर्ष ने पार्वती के प्रति अपना श्रद्धाभाव व्यंजित किया है । इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार की छटा दर्शनीय है । संचारी भावों का वर्णन बड़ी मनोरंजकता के साथ किया है ।

शब्दार्थः — नवे संगमे=प्रथममिलन के समय में, औत्सुक्येन=उत्सुकता के कारण, कृतत्वरा=शीघ्रता करती हुई, सहभुवा=सहज ही उत्पन्न, स्वाभाविक, ह्रिया=लज्जा से, व्यावर्तमाना=लौटती हुई, बन्धुवधूजनस्य=सम्बन्धी स्त्रियों के, तैः तैः=उन २ प्रोत्साहकारक वचनों से, पुनः=फिर, साम्मुख्यम्=सामने, नीता=लाई जाती हुई, अग्रे=आगे, सामने, वरं=पति, शकर को, दृष्ट्वा=देखकर, आत्तसाध्वसरसा=भयजन्य कम्पन तथा आनन्द को प्राप्त (अनुभव) करती हुई, संरोहत्पुलका=रोमाञ्चयुक्त होती हुई, हसता=हसते हुए, हरेण=शंकर जी के द्वारा, श्लिष्टा=आलिंगन की जाती हुई, गौरी=पार्वती, वः=तु हमारा, सामाजिकों का शिवया=कल्याण के लिए, अस्तु=होवें, अर्थात् कल्याण करें।

(२) श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी,
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।
वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुनः,
मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वोगुणानां गणः॥

प्रसंग—महाकवि श्री हर्ष ने नान्दी पाठ करने के पश्चात् सामाजिकों के कातूहल एवम् उत्कण्ठा को शान्त करने के लिए अभिनेय नाटिका की कथा वस्तु की ओर सकेत करते हुए, तथा अभिनेता, कवि, एवं सामाजिकों की गुणग्राहकता का परिचय प्रस्तुत करते हुए कहा है। कि—

व्याख्यार्थ—(इस नाटिका के प्रणेता) श्री हर्ष कुशल (प्रतिभा सम्पन्न) कवि हैं। यह सभा भी गुण ग्राहक-गुणों से परिपूर्ण है अर्थात् गुणों का आदर करने वाली है। वत्सराज, महराज उदयन का चरित लोगों को (सामाजिकों को) आकर्षित करने वाला है, और हम सभी (अभिनेता गण) अभिनय कला में चतुर हैं। इन वस्तुओं में एक-एक वस्तु भी मनोरथ सिद्धि का कारण है, फिर यहां क्या कहना क्योंकि यहां तो मेरे भाग्य की उच्चता के कारण यह समस्त गुणों का समुदाय एक साथ उपस्थित हो गया है।

विशेष—इससे नाटिका की रमणीयता, सरसता एवम् आकर्षण शक्ति की प्रचुरता व्यंजित होती है, साथ ही उदयन के लोक प्रसिद्ध चरित की

मनोरंजकता, पात्रों की अभिनेय कुशलता और कवि की असाधारण प्रतिभा की अतिशयिता तथा सामाजिकों की विदग्धता अभिव्यक्त होती है। सामाजिकों को उत्साहित करने के लिए "प्ररोचना" की रचना प्रस्तुत श्लोक में कवि ने की है।

शब्दार्थः—एषा=यह, परिषदपि=सभा भी, वत्सराजचरितम्=राजा उदयन का चरित्त, हारि=आकर्षक, नाट्ये=नाट्य कला, अभिनय कला में, दक्षाः=चतुर, इह=यहां, इस सभा में, एकैकमपि=एक एक भी, वाञ्छित-फलप्राप्तेः=मनोरथ सिद्धि में, पदम्=स्थान है (समर्थ है) मद्भाग्योपचयात् =मेरी भाग्य की उच्चता से, गुणानाम्=सभी गुणों का, गणः=समूह, समुदितः=एकत्रित हो गया है।

(३) द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में नट के शब्दों को लेकर पात्रों का प्रवेश वर्णन करने के लिए प्रस्तावना का भेद 'कथोद्घात" का अवतरण करते हुए श्री हर्ष ने लिखा है कि—

व्याख्यार्थः— अनुकूल भाग्य अन्य द्वीपों से भी सागर के मध्य से भी और दिशाओं के कोनों से भी अभीष्ट (मनपसन्द) (वस्तु) को तुरन्त मिला देता है।

विशेष—इस श्लोक में भाग्य की अनुकूलता से कुछ भी अभीष्ट वस्तु दुर्लभ नहीं होती है अपितु भाग्य की अनुकूलता में सब कुछ मन पसन्द वस्तु हस्तगत ही समझना चाहिए अथवा हस्तगत होती हैं। इससे भाग्य का अपरिमेय बलातिशय व्यंजित होता है।" भाग्यं फलति सर्वत्र नच विद्या नच पौरूपम्" की ओर संकेत प्रतीत होता है। इससे यह ध्वनित होता है कि श्री हर्ष भाग्यवादी थे।

शब्दार्थ—अभिमुखीभूतः=अनुकूल हुआ, विधिः=भाग्य, अन्यस्मात्= अन्य, और, दूसरे, द्वीपात्=द्वीप से, जलनिधेः=सागर के, मध्यात्= मध्य से, दिशः+पूर्वादि दिशा के, अन्तात्=कोनों से, छोरों से, अभिमतम

=इष्ट, प्रिय, मनपसन्द, झटिति=अकस्मात्, तुरन्त, आनीय=लाकर, घटयति=मिला देता है।

(४) विश्रान्त विग्रहकथो रतिमाञ्जनस्य,
चित्ते वरान्प्रिय वसन्तक एव साक्षात्।
पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय
वत्सेश्वरः कुसुम चाप इवाभ्युपैति।।

प्रसंग—यौगन्धरायण नामक मन्त्री वाद्य आदि के कोलाहल को सुनकर कहता है—कि—ऐसा प्रतीत होता है राजा उदयन ',मदनोत्सव" देखने के लिए राज महल पर चढ़ रहे हो। आगे देखकर अरे—यह महाराज राजमहल पर चढ़ भी गये हैं।

व्याख्याऽर्थः— प्रेमी (राजा) प्रजा के हृदय में समाये हुए वत्स देश राजा महराज उदयन हैं जिन राजा उदयन के युद्ध की बात समाप्त हो गई है जिनको वसन्तक नामक मित्र है, वह उदयन मानों साक्षात् शरीर धारण किये हुए काम देव हों, जिसके बिग्रह (शरीर) की कथा समाप्त हो गई है (अर्थात् जिसके शरीर को भस्म करके भगवान शंकर ने शरीर की कथा समाप्त कर दी है), जिस काम देव की पत्नी "रति" है जो लोगों के हृदय में निवास करता है तथा जिस कामदेव का मित्र वसन्त ऋतु है। अपने उत्सव अर्थात् काम के महोत्सव को देखने के लिए उत्कण्ठित होकर सामने (ही) आ रहा है।

विशेष—इससे उदयन के प्रेमी, विलासी, होने की अतिशयिता, उदयन के सौन्दर्यातिशय की अभिव्यक्ति, "विश्रान्तविग्रहकथः" से उदयन का पराक्रमातिशय व्यंजित हो रहा है। यहां उपमान कामदेव और उपमेय राजा उदयन हैं 'इव" उपमा वाचक शब्द है, "विग्रह" शब्द श्लिष्ट है अनतः श्लेष अनुप्राणित उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है।

शब्दार्थः- विश्रान्तविग्रहकथः=राजा के पक्ष में-शान्त हो गई है, युद्ध की बात जिसकी वह अपराजेय राजा उदयन, कामदेव के पक्ष में जिसके शरीर की कथा ही समाप्त हो गई है यह कामदेव, रतिमान्=प्रेमी, वसन्=रहता

हुआ, प्रियवसन्तकः=वसन्तक नामक प्रिय मित्र है, वत्सेश्वरः=वत्स देश का राजा, उदयन, निजमहोत्सवदर्शनायोत्सुकः=अपना महोत्सव देखने के लिए, उत्सुक प[र्युत्]सुकः=उत्कण्ठित होता हुआ, स[ा]क्षात्=शरीरधारी, कुसुमचापइव=कामदेव के समान, अभ्युपैति=इधर ही आ रहे हैं।

(५) कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवस मुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरैः,
हेमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा,
कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेनैकपीता विभाति॥

प्रसंग—राजा उदयन वसन्तोत्सव के समय मदनोत्सव के उल्लास को देखकर कहता है—कि—नागरिकों का उल्लास चरम-सीमा तक पहुंच गया है—क्योंकि—देखो—

व्याख्याऽर्थः—केसर के चूर्ण के पीले रंग से दिन को उषा काल में परिणत करने वाले, लोगों के द्वारा फेंके जाने वाले सुगन्धित चूर्णों के समूहों से, सोने के आभूषणों को कान्तियों से और आभूषणों के भार से शिरों को झुका देने वाले अशोक वृक्ष के फूलों को शिर पर धारण किये हुए शिरो भूषणों से यह कौशाम्बी नामक नगरी, जिसने नागरिकों के वेष से प्रकटित ऐश्वर्य से कुबेर के समस्त कोश (भण्डार) को तिरस्कृत कर दिया है अर्थात् जीत लिया है, और जिस नगरी के निवासी लोग ऐसे प्रतीत होते हैं मानों वे सोने के पीले रस (जल) से लिप्त हो गये हों। इस प्रकार यह (कौशाम्बी) नगरी केवल पीतवर्ण हो दिखाई पड़ रही है।

विशेष—इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार की छटा दर्शनीय है। प्रस्तुत वर्णन से कौशाम्बी नगरी का सम्पन्नतातिशय एवम् ऐश्वर्यातिशय अभिव्यंजित हो रहा है।

शब्दार्थ—वेषाभिलक्ष्यस्वविभव-विजिताशे-षवित्तेशकोशा=नागरिकों की वेषभूषा से प्रतीत होता है ऐश्वर्य जिसका ऐसी कौशाम्बी ने कुबेर के (धन के कोश को भी विजित करने वाली, कुङ्कुमक्षोदगौरैः=केसर के चूर्णों से, कृतदिवसमुखैः=दिन को उषा काल में परिणत करने वाले, पिष्टातकौघैः=सुगन्धित पीले केसर के समूहों से, हेमालंकारभाभिः=सोने के आभूषणों की

कान्तियों से, भरनमितशिखैः=भार से झुके हुए शिखरों वाले, केङ्किरातैः= अशोकवृक्षों के पुष्पों से, शातकुम्भद्रवखचितजलेन=स्वर्ण के रस से सिक्त लोगों के समान, शेखरैः=शिरोभूपणों से, एकपीता=केवल पीली, विभाति=सुशोभित हो रही है।

(६) धारायन्त्रविमुक्तसंततपयः पूरप्लुते सर्वतः,
सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रोडे क्षणं प्राङ्गणे।
उद्दाम प्रमदाकपोल निपतत्सिन्दूररागारुणैः,
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ॥

प्रसंग—राजा उदयन वसन्तोत्सव के समय मदनोत्सव के नागरिकों के उल्लास को देखकर देखता है।

व्याख्यार्थ—चारों ओर पिचकारियों से छोड़ी जाती हुई निरन्तर जल की धाराओं से भरे हुए, और उसी समय अत्यधिक भीड़ से (उत्पन्न) पङ्क में की गई क्रीडा वाले आंगन में, नागरिकों के द्वारा अत्यन्त मतवाली स्त्रियों के कपोलों से गिरते हुए सिन्दूर के रंग से लाल हुए पैरों के चिन्हों से वह सामने का फर्श क्षणभर के लिए सिन्दूर वर्ण का अर्थात् लाल रंग का किया जा रहा है।

विशेष—इस श्लोक से कौशाम्बी की विलासिता की अतिशयिता एवं सम्पन्नता की अतिशयिता व्यंजित हो रही है।

शब्दार्थ—सर्वतः=चारों ओर, सभी ओर, धारायन्त्रविमुक्तसंततपयः-पूरप्लुते=पिचकारियों से छोड़े हुए निरन्तर जल के वेग से व्याप्त, सद्यः= शीघ्र, उसी समय, सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे=अत्यधिक भीड़ के द्वारा पंक में की गई क्रीडा से युक्त, प्राङ्गणे=आँगन में, जनेन=लोगों से, उद्दामप्रमदा-कपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः=मतवाली स्त्रियों के कपोलों से गिरने वाले सिन्दूर के रंग से लाल, चरणन्यासैः=पैरों के चिन्हों से, पुरः=आगे का, सामने का, कुट्टिमम्=फर्श, क्षणम्=क्षणभर के लिए, सैन्दूरीक्रियते=सिन्दूर के रंग से लाल किया जा रहा है।

(७) अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे,
दृष्टो मनाङ्मणिविभूषणरश्मिजालैः।

पादालमुद्यतफणाकृतिश्रृङ्कोऽयं,
मामद्य संस्मरयतीह भुजङ्गलोकः ॥११२॥

प्रसंग—राजा उदयन विदूषक के द्वारा दिखाये गये वसन्तोत्सव को देखकर कहता है—कि—अरे मित्र ? आपने ठीक ही देखा है—क्योंकि—

व्याख्यार्थ:—नागरिकों के द्वारा बिखेरे गये गुलाल से उत्पन्न (किये गये) इस अन्धकार में, रत्नों से जडित आभूषणों की किरणों के समूह से कुछ कुछ दिखाई पड़ने वाला, (सांप के) फण के समान आकृति वाली पिचकारी को उठाये हुए (हाथों में लिये हुए) यह कामी (विलासी) नागरिकों का समूह (सांप के पक्ष में—सांपों का समूह) आज (इस उत्सव में) मुझे (उदयन को) पाताल लोक का स्मरण करा रहा है।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से कौशाम्बी की परम सम्पन्नता और वहाँ के नागरिकों की विलासिता की उत्कृष्टता—अभिव्यंजित हो रही है। यहां "भुजङ्ग" शब्द श्लिष्टार्थक है।

शब्दार्थ—प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे=बिखरे हुए गुलाल से किये गये अन्धकार में, मणिविभूषणरश्मिजालैः=रत्नों से जटित आभूषणों की किरणों के समूहों से; मनाक्=कुछ कुछ; दृष्टः=दिखाई पड़ने वाला, उद्यतफणाकृतिश्रृङ्कः=सांप के फण के आकार के समान पिचकारियां को उठाये हुये (हाथों में लिए हुए), अयम्=यह; भुजङ्गलोकः=विलासियों का समूह. अन्य अर्थ सांपों का समूह, अद्य=आज, इस समय, पातालम्=पाताललोक का, संस्मरयति=स्मरण करा रहा है।

(८) अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारंप्रयाते रवा—
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन्।
संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादास्तवासेवितुम्,
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ॥

प्रसंग—मदनोत्सव के समय उदयन की पटरानी वासवदत्ता विदूषक को पुष्प एवम् आभूषण आदि उपहार देती हुई कहती है—कि—आप स्वस्ति वाचन ग्रहण कीजिए, इसी समय नेपथ्य में वैतालिक पाठ करता हुआ कहता है—

व्याख्याऽर्थ—सम्पूर्ण अपनी किरणों की कान्ति को अस्ताचल पर डालने

वाले सूर्य के आकाश के उस पार चले जाने पर, और अब सायंकाल के समय एक साथ राजसभा मण्डप की ओर मिलकर प्रस्थान करते हुए राजाओं का समूह, चन्द्रमा के समान नागरिकों की आँखों को अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले आपके राजा उदयन के कमलों की शोभा का अपहरण करने वाले पैरों की सेवा करने के लिए ऊपर मुख किये हुये प्रतीक्षा कर रहा हैं। अर्थात् समस्त राजा लोग उदयन के चरण कमलों की सेवा करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से राजा उदयन का प्रतापातिशय व्यंजित हो रहा है। यहां उदयन की उपमा चन्द्रमा से दी गई है अतः उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है।

शब्दार्थ—**अस्तापास्तभासि**=अस्ताचल पर अपनी किरणों की कान्ति को डालने वाले, **रवौ**=सूर्य के, **नभसः**=आकाश के, **पारम्**=दूसरी ओर, पार; **प्रयाते**=चले जाने पर, **चायंतने समये**=सायंकाल के समय, **समेय**=एक साथ, **आस्थानीम्**=राजसभा की ओर, **संपतन्ः**=प्रस्थान करते हुए, **नृपजनः**=राजा लोग, **सम्प्रति**=इस समय, **दृशाम्**=नेत्रों को, **प्रीत्युत्कर्षकृतः**=अत्यन्त प्रेम का आनन्द देने वाले, **उदशनस्य**=वत्स कुलोत्पन्न राजा उदयन के, **इन्वोः**=चन्द्रमा की, **सरोरुहद्युतिमुषः**=कमलों की कान्ति को चुराने वाले, **पादान् इव**=किरणों के समूह के समान, **तव**=तुम्हारे, आपके **पादान**=चरणों की, **आसेवितुम्**=सेवा करने के लिए, **उद्वीक्षते**=प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(९) देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा,
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्
श्रुत्वा ते परिवार वार वनितागीतानि भृङ्गांगना,
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव ॥

प्रसंग—राजा उदयन नाटिका के प्रथम अंक की समाप्ति के समय वासवदत्ता के मुखकान्ति की प्रशंसा करता हुआ वासवदत्ता से कहता है—कि—

व्याख्यार्थ—राजा उदयन घूमता हुआ कहता है कि हे देवि ? देखो, चन्द्रमा की कान्ति का तिरस्कार करने वाले तुम्हारे मुख रूपी कमल से पराजित हुए कमल सहसा कान्ति हीन (मलिन) हो रहे हैं, तुम्हारी सेवा करने वाली

परिचारिकायें गणिकाओं के द्वारा गाये हुये गीतों को सुनकर भ्रमरों की स्त्रियां ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों वे लज्जित हुई धीरे से पुष्प कलिकाओं के अन्दर छिप रही हैं।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से वासवदत्ता का सौन्दर्यातिशय तथा गणिकाओं के संगीत का माधुर्यातिशय व्यंजित हो रहा है तथा प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा, एवम् रूपक अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

शब्दार्थः—शशिनः = चन्द्रमा की, शोभातिरस्कारिणा = शोभा (कांति) का तिरस्कार करने वाले, मुखपङ्कजेन = मुख रूपी कमल से, विनिर्जितानि = पराजित, अब्जानि = कमलों को, विच्छायताम् = कान्तिहीनता को, मलिनता को, भृंगांगनाः = भ्रमरो की स्त्रियां, त्वत्परिवारवारवनिता गीतानि = तुम्हारी सेविका गणिकाओं के द्वारा गाये जाने वाले गीतों को, सञ्जातलज्जाइव = मानों उत्पन्न हुई लज्जा से युक्त हुई, शनकैः—धीरे से, मुकुलान्तरेषु = पुष्प कालिकाओं के अन्दर लीयन्ते = छुप रही हैं।

(१०) परिम्लानपीनस्तजघनसंगादुभयतः,
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः,
कृशाङ्ग्याः संतापं वदति नलिनीपत्रशयनम्॥

प्रसंग—राजा उदयन विदूषक के द्वारा दिखाये हुये कमल के पत्तों के बिछावन को देखकर कहता है कि हे मित्र! तुमने ठीक ही जाना क्योंकि—विशाल एवं स्थूल स्तन तथा जघन स्थल के सम्पर्क से दोनों ओर मलीन हुआ, अतिकृश अर्थात पतली कमर के भाग का सम्पर्क न प्राप्त करने से मध्यभाग में हरा, और शिथिललता के समान (सुन्दर) हाथों को इधर-उधर फेंकने से अर्थात चलाने से (हिलाने डुलाने से) अस्त व्यस्त (छिन्न भिन्न) हो गई है रचना जिसकी ऐसा यह कमलिनी के पत्तों का बिछावन (उसके, विरह से) दुबली हुई (कृशाङ्गी) सागरिका के विरहजन्य सन्ताप को कह रहा है। अर्थात यह मलिन कमलिनी पत्तों का विस्तार ही उस कृशाङ्गी के सन्ताप को व्यक्त कर रहा है।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से सागरिका विरहातिशय एवम् उसकी कामातु

दशा से उत्पन्न व्याकुलता का आधिक्य अभिव्यंजित हो रहा है। तथा उसके पूर्ण उपभोग योग्य यौवन का प्रभावातिशय व्यंजित हो रहा है।

शब्दार्थ—**पीनस्तनजघसंगात्**=स्थूल स्तन और स्थूल जघनस्थल के सम्पर्क से, **उभयत:**=दोनों ओर, **परिम्लानं**=मलिनता को प्राप्त, **तनो:**=दुर्बल, पतले, **मध्यस्य**=मध्यभाग, कटिभाग, कमर के भाग के, **परिमिलनम्**=सम्पर्क को, **अप्राप्य**=न प्राप्त करके, **अन्त:**=बीच में, **हरितम्**=हरा, **श्लथभुजलताक्षेपवलनै:**,=शिथिलता के समान हाथों को (इधर-उधर) फेकने से, चलाने से, **व्यस्तन्यासम्**=अस्त व्यस्त (छिन्न-भिन्न) रचना वाला, **इदम्**=यह, **कमलिनीपत्रशयनम्**=कमलिनी पत्तों का बिछावन, **कृशाङ्ग्या:**=दुर्बल अंगों वाली विरहिणी सागरिका के, **सन्तापम्**=विरहजन्यपीडा को, **वदति**=कह रहा हैं।

(११) स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत्,
कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम्।
अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्यां यथास्या,
स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति॥

प्रसंग=राजा उदयन सागरिका के विरह से मलिन कमलिनी के पत्तों के विस्तार को देखकर. उसके विरहातिशय का अनुमान करके पुन: विदूषक से कहता है कि और भी देखिये—

व्याख्यार्थ—वक्ष: स्थल पर पड़ा हुआ यह विशाल कमलिनी पत्र इस सागरिका के हृदय की कामजन्य दशा को उतनी मात्रा मे कह रहा है। जितनी मात्रा में अत्यन्त विरहजन्य ताप से (पीड़ित) एवं मलिनता को प्राप्त गोल आकार वाले इसके दोनों स्तनों की विशालता को कह रहा है। अर्थात सन्ताप की अपेक्षा स्तनों की विशालता विशेष रूप से व्यक्त कर रहा है।

विशेष:—प्रस्तुत वर्णन से सागरिका का पूर्ण यौवनत्व और स्तनो की विशालत: अनिशय आकर्षक रूप अभिव्यजित हो रहा है। इसके अतिरिक्त सागरिका पूर्ण उपभोग योग्य दशा को प्राप्त हो गई है और उदयन की दृष्टि उसके गोलाकार स्तनों के चिन्ह देखने में जितना अधिक रम रही है उतना

उसके विरह से मलिन हुए कमलिनी पत्रशयन में नहीं रम रही है यह भी ध्वनित हो रहा है।

शब्दार्थ—अस्याः नायिका के, उरसि=वक्षस्थल पर, स्थितम्=पड़े हुए, एतत्=यह, पद्मिनीपत्रम्=कमलिनी पत्र, अन्तः मन्मथोत्थाम्=हृदय के अन्दर उत्पन्न काम (दशा को) अवस्थाम्=दशा को, अति गुरुपरितापम्लापिताभ्याम्=अत्यन्त भारी विरह जन्य संताप से मलिन हुए, मण्डलाभ्याम्=गोलाकार चिन्हों से युक्त, स्तनयुगपरिणाहम्=दोनों स्तनों की विशालता को ब्रवीति=कह रहा है।

(१२) कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादम कर्षन्,
क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किंकिणीचक्रवालः।
दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः,
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः॥

प्रसंग—सुसंगता नामक वासवदत्ता की दासी सागरिका से कह रही थी धैर्य रखो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। उसी समय नेपथ्य से सुनाई पड़ता है—कि—

व्याख्याऽर्थ—गले में टूटने से अवशिष्ट (बची) हुई सोने की जंजीर को भूमि पर घसीटता हुआ उछल कूद करने के कारण चंचल (वन्दर) जो पैरों में बजते हुये घुंघूरुओ के समूह से युक्त द्वारों को लांघकर स्त्रियो को भयभीत करता हुआ, सहसा घबराये हुये अश्वरक्षकों के द्वारा पीछा किया जाने वाला, अश्वशाला से खुला हुआ यह वन्दर राजमहल में प्रवेश कर रहा है।

विशेष—वन्दर की चञ्चलता का स्वाभाविक वर्णन दर्शनीय है। अतः स्वभावोक्ति अलंकार है। अनुप्रास अलंकार की छटा तथा माधुर्य गुण की उत्कृष्टता दर्शनीय है।

शब्दार्थ—कण्ठे=गले में, कृत्तावशेषम्=काटने से अथवा टूटने से बची हुई, कनकमयम्=स्वर्णनिर्मित, शृंङ्खलादाम=जंजीर, अध=नीचे (भूमि पर) कर्षन्=खींचता हुआ, घसीटता हुआ, हेलाचरणरणत्किंकिणीचक्रवालः=चञ्चलतावश पैरों में बजती हुई घुंघुरुओ के समूह वाला. द्वाराणि=द्वारों को, क्रान्त्वा=लांघकर, अङ्गनानाम्=स्त्रियों को, दत्तातंक=भयभीत

करता हुआ, ससंभ्रमात्=सहसा, घबराहट से, अश्वपालैः=अश्वरक्षकों के द्वारा अनुसृतसरणिः=पीछा किया जाता हुआ, मन्दुरायाः=अश्तशाला से प्रभ्रष्टः=खुला हुआ, प्लवङ्गः=वन्दर, नृपतेः=राजा के, मन्दिरम्=भवन में, प्रविष्टः=प्रवेश कर रहा क्ष।

(१३) नष्टं वर्ष वरैर्मनुष्यगणनाभावादपास्यत्रपा,
मन्तः कंचुकिकंचुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातै कृतं,
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशंकिनः॥

शब्दार्थ—वर्षवरैः=हिजड़े, मनुष्यगणनाभावात्=मनुष्यों में गणना न होने से अपाम्=लज्जा को, अपास्य=छोड़कर, नष्टम्=भाग रहे हैं। त्रासात्=भय से, कंचुकिकंचुकस्य=कंचुकियों के कंचुक वस्त्रों के, अन्तः=अन्दर, विशति=प्रवेश कर रहे हैं। पर्यन्ताश्रयिभिः=राजभवन के छोर में रहने वाले, किरातैः=भील लोग, आत्मेक्षणाशंकिनः=अपने को देखने के भय से भयभीत, कुब्जाः=कुबड़े, शनकैः=धीर से, नीचतयैव=झुके हुये ही, यान्ति=जा रहे है।

(१४) दशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विषः,
चतुर्भिरपि साधुसाध्विति मुखैः समं व्याहतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद ध्रुवं वेधसा,
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम्॥

प्रसंग—विदूषक के मुख से सागरिका के सौन्दर्य का निर्माण करके ब्रह्मा को भी देखकर आश्चर्य हुआ होगा" इस कथन को सुनकर उदयन ने कहा है कि हे मित्र! तुम ठीक ही कहते हो, यह विचार मेरे मन में भी उत्पन्न हो रहा है कि—

व्याख्यार्थ—निश्चय ही ब्रह्मा ने तीनों लोकों की शोभा बढ़ाने वाली अर्थात् तीनों लोकों में श्रेष्ठ अनुपम सुन्दरी इस रमणी की रचना करके, आश्चर्य के कारण अपने निवास स्थान कमल के पत्तों की कान्ति को पराजित करने वाले अपने लोचनों को फैलाया होगा अर्थात् आश्चर्य से अपने नेत्रों को फैलाकर देखते ही रह गये होंगे और चारों मुखों से एक साथ "बहुत अच्छा

बहुत अच्छा" (वाह, वाह) यह कहा होगा और ब्रह्मा जी के चारों सिर (इसके अप्रतिम सौन्दर्य की प्रशंसा में) हिले होंगे अर्थात् चारों शिरों को हिलाकर इसके सौन्दर्य की प्रशंसा अवश्य की होगी।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से सागरिका का असाधारण सौन्दर्यातिशय अभि-व्यंजित हो रहा है।

शब्दार्थ—जगत्त्रयललामभूताम्—तीनों लोकों की शोभा बढ़ाने वाली, तीनों लोकों का आभूषण रूप, वेधसा=ब्रह्मा ने, ध्रुवम्=निश्चय ही, विस्मयवशात्=आश्चर्य के कारण, जितनिजाब्जपत्रत्विषः=अपने निवास स्थान रूप कमल के पत्तों की कान्ति को जीतने वाली, दृशः=दृष्टि को, नेत्रों को, पृथुतरीकृता=फैलाया होगा, समम्=एक साथ, साधु-साधु=ठीक-ठीक, बहुत अच्छा, व्याहृतम्=कहा होगा, शिरांसि=चारों शिरों को, चलितानि=हिलाया होगा।

(१५) क्रिया सर्वस्यासौ हरति विदिताऽस्मीति वदनं
द्वयोर्दृष्ट्वाऽऽलापं कलयति कथामात्म विषयाम्।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं,
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातंक विधुरा ॥३४॥

प्रसंग—राजा उदयन सागरिका के प्रेम से व्याकुल होता हुआ कहता है कि मुझे अपनी चिन्ता नहीं है अपितु महारानी वासवदत्ता के क्रोध से उस सागरिका की ही मुझे चिन्ता है क्योंकि—

व्याख्यार्थ—मेरे विषय में अर्थात सागरिका मेरे से प्रेम करती है यह सब ने जान लिया है। इस लज्जा से वह सागरिका सबसे अपना मुख छिपाती है। दो व्यक्तियों को बातें करते देखकर यह समझने लगती है कि मेरे ही विषय में बातें कर रहे है। जब सखियां उसके (सागरिका के) सामने मुस्कराती है तब वह खिसिया जाती है अर्थात् लज्जा से गढ़ जाती है। इस प्रकार (मेरी वह) प्रिया (सागरिका) प्रायः अपने ही हृदय में स्थित आतंक (भय) से व्याकुल रहती है।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से सागरिका का मुग्धा नायिकात्व व्यंजित हो रहा है तथा उसकी करुण दशा की अतिशयिता व्यंजित हो रही है। इसके अतिरिक्त उसकी व्याकुलता जन्य विलक्षण दशा की अभिव्यक्ति हो रही है।

शब्दार्थ—असौ=वह सागरिका विदितास्मि=जान ली गई हूं कि मैं राजा उदयन से प्रेम करती हूं, इति=इस, ह्रिया=लज्जा से, सर्वस्य=सभी लोगों से, वदनम्=अपने मुख को, हरति=छिपाती है, द्वयोः=दो व्यक्तियों के, आलापम्=बातचीत को, दृष्ट्वा=देखकर, सुनकर, आत्मविषयाँ=अपने से सम्बन्धित, कथां=बातचीत को, कलयति=सोचती है, घटित करती हे, सखीषु=सखियों के, स्मेरासु=मुस्कराने पर, वैलक्षण्यं=विशेष लज्जा को, हृदयनिहितातंकविधुरा=अपने हृदय में स्थित आतंक (भय) से व्याकुल, आस्ते=हो रही है।

(१६) बाणा पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जनः,
प्रायोऽस्मद्विध एवलक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धि गतम्।
दृष्टं तत्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं,
विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम्॥३३॥

प्रसंग—राजा उदयन सागरिका के प्रणय से व्याकुल होता हुआ कामदेव को उपालम्भ देता हुआ कहता है कि—

व्याख्याअर्थ—(हे पुष्पों का धनुष धारण करने वाले कामदेव! तुम्हारे विषय में जो संसार में प्रसिद्ध है कि कामदेव के पाँच बाण ही निश्चित है अर्थात् कामदेव के सीमित केवल पांच बाण ही होते हैं और उन पांचों बाणों के लक्ष्य हम जैसे असंख्य लोग होते हैं। यह आपकी प्रसिद्धि मिथ्या (विपरीत) प्रतीत होती है क्योंकि तुम तो असंख्य बाणों से आहत हुए हम जैसे असहाय, शरणहीन कामी पुरुषों को पञ्चत्व अर्थात् मृत्यु को प्राप्त करा रहे हो। (अतः निःसन्देह आप पाँचों बाणों वाले न होकर असंख्य बाणों वाले हो। पञ्च बाण की प्रसिद्धि सर्वथा मिथ्या प्रतीत होती है)।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से कामदेव का असाधारण प्रभावातिशय व्यंजित हो रहा है तथा कामी जनों के लिये प्रियजन का विरह तो असह्य एवं मृत्यु कारक ही होता है। यह ध्वनित हो रहा है।

शब्दार्थ—मनोभवस्य=मनोज, कामदेव के, नियता=निश्चित हैं, अस्मद्विधः=हम जैसे लोग, विप्रतीपम्=विपरीत, मिथ्या, दृष्टम्=देख रहा

हूं, विद्धः=बिंधे हुए, आहत हुए, अशरणः=असहाय, शरणहीन, पञ्चतान्=मृत्यु को, याति=प्राप्त हो रहे हैं।

(१७) अध्वानं नैकचक्रः प्रभवति भुवनभ्रान्तिदीर्घं विलंघ्य,
प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः।
संध्यामृष्टावशिष्ट स्वकर परिकर स्पष्ट हेमारपंक्ति,
व्याकृष्या वस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैष दिक्चक्रमर्कः ॥३५॥

प्रसंग—विदूषक से दिन समाप्त होने की बात सुनकर राजा उदयन ने कहा कि हे मित्र ! तुमने ठीक ही देखा है क्योंकि—

व्याख्याअर्थ—यह सूर्य एक पहिये वाले रथ से समस्त संसार की परिक्रमा से दीर्घ मार्ग का अतिक्रमण करके पुनः प्रातः काल तक उदयगिरि तक नहीं पहुंच सकेगा। अतः इस चिन्ता के भारी बोझ को लिए हुए अस्ताचल पर स्थित हुआ, सन्ध्या से नष्ट होने से अवशिष्ट अपने किरणों के समूह रूपी चमकती हुई सोने के अरों (धुरी के डण्डों) की पंक्ति वाले दिक् चक्र को अपने रथ में लगाने के लिए खींचकर मानों ले जा रहा है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों की छटा दर्शनीय है। कवि की कल्पना शक्ति का यह विलक्षण उदाहरण अप्रतिम प्रतिभा शक्ति का द्योतक है।

शब्दार्थ—एकचक्रः=एक पहिया, भुवनभ्रान्तिदीर्घम्=समस्त संसार की परिक्रमा से दीर्घ, अध्वानम्=मार्ग को, विलङ्घ्य—लांघ करके, न्यस्तचिन्तातिभारः=चिन्ता को भारी बोझ को धारण किये हुए, अर्कः=सूर्य, क्षितिभृति=अस्ताचल पर, अवस्थितः=स्थित हुआ, संध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपंक्ति=सध्या के द्वारा नष्ट होने से बचे हुए अपनी किरणों के समूह रूपी चमकती हुई सोने के अरों डण्डों की पंक्ति वाले, दिक्चक्रम्=दिशारूपी पहिये को, व्याकृष्य=खींचकर, नयतीव=मानों ले जा रहा है।

(१८) यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष,
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्या,
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥३६॥

प्रसंग—राजा उदयन विदूषक से कहता है कि—अनुरागी -सूर्य अपनी सन्ध्या रूपी वधु को मानने के लिये कहता है कि—

व्याख्यार्थ—सूर्य अस्ताचल पर अपनी किरणें बिखेर कर मानों कमलिनी को सान्त्वना देता हुआ कह रहा है कि—हे कमलनयनी मैं (सूर्य) अब जा रहा हूं। मेरे जाने का समय हो गया है परन्तु मैं ही आपको सोती हुई को जगाऊंगा।

सांकेतिक अन्य अर्थ यह ध्वनित होता है कि—नायिका के झुके हुये शिर पर हाथ रखे हुए मानो कह रहा है कि–हे कमल धारण करने वाली नायिके! मैं तुमको विश्वास दिला रहा हूं कि—हे कमल के समान नेत्रों वाली मैं अब जा रहा हूं (क्योंकि) हमारा समय है (शर्त है) कि, सोती हुई आपको मैं ही जगाऊंगा।

विशेषण—प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा, तथा समासोक्ति अलंकार की छटा दर्शनीय है। नायक के द्वारा नायिका के लिए सान्त्वना व्यंजित हो रही है।

शब्दार्थ:—अस्तमस्तकनिविष्टकर:=अस्ताचल के शिखर पर किरणों को डालते हुए, पद्मनयने=हे कमलनयनी, यातोऽस्मि=जा रहा हूँ, सुप्ता=सोई हुई, भवती=आपको,, प्रतिबोधनीया=जगाउँगा। सरोरूहिण्या:=कमलिनी को, प्रत्यायनामिव=मानों सान्त्वना, विश्वास को,।

(१९) किं पद्मस्यरूचं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं,
वृद्धि वाझषकेतनस्य कुरूते नालोकमात्रेण किम्।
वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरभ्युद्गतो,
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति विम्बाधरे ।।३।१३।।

प्रसङ्ग:—चन्द्रमा को उदय होते हुए देखकर राजा उदयन पर्दा किये वासवदत्ता को सागरिका समझकर कहता है कि—

व्याख्यार्थ:—हे सागरिके क्या तुम्हारा मुख कमलों की शोभा नष्ट नहीं करता है? अपितु अवश्य नष्ट करता है। क्योंकि वह (तुम्हारा मुख) आंखों को आनन्द नहीं दे रहा है? अपितु आनन्द दे रहा है। क्या (वह तुम्हारा मुख) देखने मात्र से कामदेव (काम वासना) की वृद्धि नहीं करता है? अपितु काम की वृद्धि करता है। तुम्हारे मुख रूपी चन्द्रमा के होते हुए भी जो

दूसरा चन्द्रमा सामने उदय हो रहा है, यदि इसे (चन्द्रमा को) कदाचित् अपने पर अमृत होने का अभिमान हो, परन्तु वह अमृत भी तुम्हारे इस बिम्बाफल के समान अधर में है ही।

विशेष:—प्रस्तुत वर्णन से सागरिका का सौन्दर्यातिशय व्यंजित हो रहा है। तथा उदयन के हृदय में सागरिका के मुख दर्शन से काम विकार उत्पन्न हो रहा है यह भी ध्वनित हो रहा है।

शब्दार्थः-वक्त्रेन्दौ=मुखरूपी चन्द्रमा के होते हुए भी, शीतांशुः=चन्द्रमा, अभ्युद्गतः=उदय हो रहा है, आलोकनमात्रेण=देखने मात्र से, झषकेतनस्य=काम-देव की, पद्मस्य=कमल की, रूचम्=कान्ति को,, नहन्ति=नहीं नष्ट करता है, किम्=क्या, नयनानन्दम्=नेत्रों को आनन्द, न विधत्ते=नहीं देता है।

(२०) आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष,
लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना।
कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे,
हर्तुं क्षमो यदि परं करूणा मयि स्यात् ॥३।१४॥

प्रसङ्गः—पर्दा किये हुए सागरिका के वेष में आई हुई वासवदत्ता को सागरिका समझकर उसके मुख की प्रशंसा करता है परन्तु प्रशसा समाप्त होते ही वासवदत्ता ने पर्दा हटा दिया तो फिर क्या रंगे हाथों राजा की चोरी पकड़ी गई तब राजा क्षमा याचना करता हुआ वासवदत्ता से कहता है।

व्याख्यार्थ:—हे देवि? (वासवदत्ता?) यह मैं लज्जित होता हुआ अपने शिर के स्पर्श से तुम्हारे पैरों की महावर के लाल रंग को पोंछता हूँ अर्थात् महावर लगे तुम्हारे लाल हुए पैरों पर पड़ता हूँ (क्षमा करो) तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा के बिम्ब पर क्रोध रूपी राहु के ग्रहण से उत्पन्न हुई लालिमा को तभी दूर करने में सफल हो सकता हूँ अर्थात् मैं तुम्हारे क्रोध को तभी शान्त कर सकता हूँ जब आपकी मुझ पर केवल दया हो जाये अर्थात् आप मुझ पर दया करें।

विशेष:—प्रस्तुत श्लोक में रूपक अलंकार की छटा दर्शनीय है। इससे

राजा उदयन की भीरुता एवं विलासिता की अतिशयिता अभिव्यक्त हो रही है।

शब्दार्थः—विलक्षा=लज्जित हुआ, मूर्ध्ना=शिर से, लाक्षाकृताम्=महावर की, आताम्रताम्=लालिमा को, अपनयामि=दूर करने में समर्थ हो सकता हूँ, मुखेन्दुबिम्बे=मुखरूपी चन्द्रम के बिम्ब में, कोपोपरागजनिताम्=क्रोध रूपी राहु के ग्रहण से उत्पन्न, हर्तुम्=दूर करने में, क्षमः=समर्थ हो सकता हूँ, परम=केवल, करूणा=दया, स्यात्=होवे।

(२१) समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं,
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलुमया।
प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ,
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ॥३॥

प्रसङ्गः—अप्रसन्न होकर वासवदत्ता के चले जाने पर विदूषक कहता है कि देवी कृपा कैसे नहीं की—कि अभी तक दोनो स्वस्थ शरीर बैठे हैं। यह सुनकर उदयन विदूषक से कहता है कि हम पर आपत्ति आ गई और तू—

व्याख्यार्थ—अनुराग के अत्यन्त अदार के कारण हमारा अनुराग दिन प्रति-दिन (निरन्तर) बढ़ रहा था। इससे पहले कभी न किये गये इस अपराध को मेरे द्वारा किया जाता हुआ (प्रत्यक्ष) देखकर सहन न कर सकने वाली मेरी प्रिया वह वासवदत्ता आज निश्चय ही प्राणों का परित्याग कर देगी क्योंकि बढ़े हुये उत्कृट प्रेम का स्खलन सहन नहीं किया जा सकता है। अर्थात चरम कोटि का प्राप्त प्रेम अपने जन के द्वारा अन्य पर किये जाने वाले प्रेम रूप अपराव को सहन नहीं कर पाता है। अतः निःसन्देह वासवदत्ता अपने प्राणों का परित्याग कर देगी।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से उदयन की भीरुता एवं वासवदत्ता के प्रति प्रेमातिशयिता अभिव्यंजित हो जाती है। वह प्रेम स्खलन से वासवदत्ता के विषय में भयभीत हो रहा है कि कहीं वह प्राणों को न छोड़ दें (आत्महत्या न कर ले) यहाँ अर्थान्तर न्यास अलंकार की छटा दर्शनीय है।

शब्दार्थ—प्रणयबहुमानात्=प्रेम के अत्यधिक आदर से अनुदिनम्=प्रतिदिन, निरन्तर, समारूढा=बढा हुआ, प्रीतिः=प्रेम, अकृतपूर्वम्=इससे

पहले कभी न किये गये, व्यलीकम्=अपराध को, वीक्ष्य=देखकर, असहमाना=सहन न करने वाली, प्रकृष्टस्य=उत्कट, प्रेम्णः=प्रेम का, स्खलनम्=टूट जाना, अविषह्यम्=न सहन करने योग्य, भवति=होता है ।

(२२) योद्धु निर्गत्या विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागा,
न्विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन् ।
वेगाद्बाणान्विमुञ्चन्समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिः निपत्य,
प्रत्यैच्छद्वाञ्छिताप्तिर्द्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ४।।५।।

प्रसंग—विजय वर्मा उदयन से कोसल राजा को पराजित करने की सूचना देता हुआ कहता है कि हमारी हाथियों की सेना युद्ध के लिये प्रस्थान करती है तो उस समय का वर्णन सुनिये—

व्याख्यार्थ—युद्ध करने के लिये विन्ध्य पर्वत से निकलकर उसी समय श्रेष्ठ हाथियों की सेना की कड़ी व्यूह रचना के द्वारा, मानों दूसरे विन्ध्य पर्वत से समस्त दिशाओं को आच्छादित करता हुआ (रुमण्वान) सामने आया। अत्यन्त तेजी से बाणों को छोड़ता हुआ (चलाता हुआ) मदयुक्त हाथियों के समूह से पैदल सेनाओं को कुचलता हुआ और मनोरथ सिद्धि के दुगने उत्साह से युक्त होता हुआ रुमण्वान् क्षण भर में झपटकर उसके (कोसल राजा के) सामने आ पहुंचा।

विशेष—प्रस्तुत वर्णन से रुमण्वान् का प्रतापाशिय, एव शौर्यातिशय अभिव्यंजित हो रहा है। उत्प्रेक्षा अलंकार की छटा दर्शनीय है।

शब्दार्थ—योद्धुम्=युद्ध करने के लिये, विन्ध्यात्=विन्ध्य पर्वत से, निर्गत्य=निकलकर, अपरेण=दूसरे, द्विपपतिपृतनापीडबन्धेनदिग्विभागान्=श्रेष्ठहाथियों की सेनाओं के समूह से, दिग्विभागान् = दिशाओं को रुन्धन्=घेरता हुआ, अभिमुखः=सामने, समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिः=मदयुक्त हाथियों के समूह से कुचली गई पैदल सेनाओं वाला, वाँञ्छिताप्तिद्विगुणितरभसः=मनोरथ प्राप्त से दुगने उत्साह वाला, निपत्य=आक्रमण करके प्रत्यैच्छत्—सामने आ गया।

(२३) हर्म्याणां हेमश्रृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः,
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै,
रेपप्लोपार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तः पुरेऽग्नि ॥

प्रसंग — राजा वासवदत्ता के साथ बैठा हुआ बाजीगर का कला प्रदर्शन देख रहा था कि सहसा नेपथ्य से कोलाहल सुनाई पड़ता है ।

व्याख्याऽर्थ — लपटों के समूह से भवनों की सोने शिखरों के समान शोभा करती हुई घने घने उपवनों के वृक्षों की चोटियों को मलिन कर देने से अत्यधिक भयंकर ताप को सूचित करने वाली धुयें के समूह से क्रीड़ा पर्वत को जल से युक्त मेघा के समान श्याम वर्ण बनाती हुई। यह अग्नि सहसा (अचानक) रनिवास में भड़क उठी है । जिसकी ऊष्मा से (ज्वाला से) स्त्रियां भस्म हो रही हैं अर्थात् स्त्रियों को भी अग्नि जलाए दे रही है ।

विशेष — प्रस्तुत वर्णन से भयानक दृश्य की उपस्थिति हो रही है । भीषण अग्नि काण्ड के सन्देह से भय की सृष्टि स्वय हो जा ताती है ।

शब्दार्थः — अर्चिषां = लपटों के, निचयैः = समूहों से हर्म्याणां = भवनों के, महलों के, हर्म्याणां — हमश्रृंग श्रियमिव = सोने के शिखरों के समान शोभा को, आदधानः = धारण करती हुई, सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनिता-त्यन्ततीव्राभितापः = घने उपवनों के वृक्षों के अग्रभागोंको मुरझा देने से अत्यधिक भयंकर ताप को सूचित करने वाली, धूमपातैः = धुएं के समूहों से, क्रीडामहीध्रम् = क्रीडा पर्वत को सजलजलधर श्यामलम् जलयुक्तबादल के समान श्यामवर्ण, कुर्वन् = करती हुई, प्लोषार्तयोषिज्जनः = ज्वालाओं से स्त्रियाँ पीड़ित हो रही है । सहसैव = अकस्मात्, अचानक, उत्थितः = उठी है, लग गई ।

विरम विरम वन्हे मुञ्च धूमानुबन्धं,
प्रकटयसि किमुच्चैरर्चिषां चक्रवालम् ।
विरहहुतभुजाऽहं यो न दग्धः प्रियायाः,
प्रबलदहनभासा तस्म किं त्वं करोषि !॥५।१६